बिश्नोई धर्म संस्कार

-: लेखक :-
Jhd".k fc'ukbZ

प्रकाशक
जाम्भाणी साहित्य अकादमी

''श्री विष्णवे नमः''

बिश्नोई धर्म संस्कार

प्रकाशक : जांभाणी साहित्य अकादमी
सैक्टर-1, ई-134, जयनारायण व्यास कॉलोनी
बीकानेर, (राजस्थान)
Email - jsakademi@gmail.com

f}rh; lLdj.k % 2013

eY; % 50/-

ISBN : *978-93-83415-06-9*

© : जांभाणी साहित्य अकादमी

-: मुद्रक :-
साहित्य संस्थान, गाजियाबाद

प्रकथन

गुरु जम्भेश्वर का जीवन परिचय उनके द्वारा उच्चरित सबद-वाणी एवं विभिन्न साधु-सन्तों गायणाचार्यों द्वारा रचित साहित्य के विषय में गत वर्षों में अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं परन्तु बिश्नोई-धर्म और समाज के विभिन्न संस्कारों के विषय में कोई अलग से पोथी प्रकाश में नहीं आई। औद्योगिक एवं कृषि क्रान्ति के कारण लोगों के पास धन बढ़ा है परन्तु उसी अनुपात में सुख-शान्ति में कमी आई है। इस आपा-धापी और अशान्ति का कारण नई पीढ़ी द्वारा अपनी परम्पराओं से कट कर पाश्चात्य संस्कृति का अन्धानुकरण करना है। सुखी एवं सफल जीवन के लिए आस्था का सम्बल आवश्यक है।

बिश्नोई पन्थ का प्रारम्भ कब और किन परिस्थितियों में हुआ ? कोई व्यक्ति बिश्नोई कैसे बन सकता है ? इस सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में भारतीय दृष्टि क्या है और कलश स्थापना में आई संख्याओं का क्या अर्थ है ? आज की बदली हुई हालत में 29 नियमों का क्या महत्त्व है ? होम करते समय जो गोत्राचार पढ़ा जाता है उसका शुद्ध स्वरूप तथा मन्त्रों का शब्दार्थ क्या है ? कलश स्थापना का उद्देश्य कलश-पूजा मन्त्र का अर्थ पाहलमन्त्र बालक-मन्त्र सुगरा दीक्षा-मन्त्र साधु-दीक्षा मन्त्र सन्ध्यावन्दन इन सब के शुद्ध श्लोकों के साथ सरल-हिन्दी भाषा में अर्थ किया गया है ताकि आज का पढ़ा-लिखा युवा-वर्ग इन्हें सरलता से समझ सके।

इन मन्त्रों के अतिरिक्त समाज में प्रचलित विवाह संस्कार के विभिन्न चरणों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है ताकि दिनों-दिन अपनी परम्पराओं से कटती जा रही नई पीढ़ी को ध्यान में रहे कि समाज का कौन सा संस्कार किस प्रकार सम्पन्न होता रहा है। संस्कारों के इसी क्रम में निर्वाण संस्कार का भी विस्तार से उल्लेख किया गया है।

रात्रि-जागरण बिश्नोई समाज का एक शिक्षण संस्थान है। बारह मास चलने वाले इस रात्रि सम्मेलन में जो जुमले की साखियाँ गाई जाती हैं उन्हें सरल अर्थ सहित मुद्रित किया गया है ताकि श्रोतागण राग-रागनी के साथ साखियों के भाव एवं अर्थ को भी ग्रहण कर सके।

समाज-शिक्षा की दृष्टि से होली दीपावली आखातीज अमावस ग्यारस जैसे चन्द व्रत-त्यौहारों का उल्लेख भी विषय की पूर्णता को ध्यान में रख कर किया गया है। अन्त में गुरु जम्भेश्वर के चरणों में श्रद्धा-सुमन स्वरूप आरती धुन एवं नित्य प्रातः-सायं होम करते समय बोले जाने वाले आहुति मन्त्रों का पाठ दिया गया है ताकि सुविधा रहे। इस प्रकार बिश्नोई समाज के धर्म और संस्कारों का एक सम्पूर्ण संक्षिप्त लेखा-जोखा प्रस्तुत करना रचनाकार का प्रमुख उद्देश्य रहा है। आशा है आप सब का स्नेह और अपनापन इससे प्राप्त होगा।

- श्रीकृष्ण बिश्नोई

अनुक्रम

	शीर्षक	पृष्ठ
1. प्रस्तावना:		
(*i*)	सृष्टि की उत्पत्ति कब और कैसे	5
(*ii*)	बिश्नोई पन्थ का प्रारम्भ एवं बिश्नोई बनने की प्रक्रिया	8
(*iii*)	29 नियम नियमों की वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सार्थकता –	9
2. संस्कार :		
(*i*)	गोत्राचार	28
(*ii*)	कलस–पूजा मंत्र	32
(*iii*)	पाहल–मंत्र	36
(*iv*)	बालक–मंत्र	40
(*v*)	गुरु–मंत्र:	42
(*vi*)	विवाह	44
(*vii*)	साधु–दीक्षा–मंत्र	51
(*viii*)	सन्ध्या–वन्दन	53
(*ix*)	निर्वाण	55
3. रात्रि–जागरण		
(*i*)	रात्रि–जागरण	57
(*ii*)	जुमले की साखियां (1 से 9 तक)	59
(*iii*)	व्रत और त्यौहार	76
(*iv*)	आरती–धुन	79
(*v*)	होम–मन्त्र	80

सृष्टि की उत्पत्ति कब और कैसे ?

भारतीय ज्योतिष शास्त्र के अनुसार जिस समय हिरण्यगर्भ (*Nebula*) का बनना आरम्भ हुआ उस काल से लेकर तब तक जब यह सूर्य–मण्डल टूट–फूट कर पुन: आदि प्रकृति में विलीन हो जायेगा के बीच के काल को कल्प अथवा एक ब्रह्मा दिन कहा गया है। इस समय को एक हजार खण्डों में बांटा गया है। एक खण्ड को एक चतुर्युगी कहते हैं अर्थात् एक ब्रह्मा दिन या एक कल्प में एक हजार चतुर्युगी होती है। इन एक हजार चतुर्युगियों को 14 मन्वन्तरों में विभाजित किया गया है। एक मन्वन्तर में 71/6/14 चतुर्युगियाँ होती है तथा एक चतुर्युगी में 4320000 मानव वर्ष होते हैं।

इस काल गणना के अनुसार अपने सौर जगत् के बनने को प्रारम्भ हुए 6 मन्वन्तर बीत चुके हैं और सातवां मन्वन्तर चल रहा है। इस 7वें मन्वन्तर का नाम वैवस्वत मन्वन्तर है। इस मन्वन्तर की 27 चतुर्युगियाँ व्यतीत हो चुकी है और अठ्ठाइसवीं चतुर्युगी के तीन युग– (सत्–त्रैता–द्वापर) बीत चुके हैं तथा चौथे कलियुग के 5091 वर्ष व्यतीत होने जा रहे हैं अर्थात् कल्प के आरम्भ से आज तक 1972949091 वर्ष व्यतीत हुए हैं और इस सृष्टि के आरम्भ को 1955885091 वर्ष हुए हैं। दोनों संख्याओं का अन्तर प्रति मन्वन्तर की समाप्ति के पश्चात् 'यति–काल' के कारण पड़ गया है।

1 कल्प या ब्रह्म दिन	= 14 मन्वन्तर
14 मन्वन्तर	= 1000 चतुर्युगी
1 चतुर्युगी	= 4 युग
4 युग	= 12000 देव वर्ष
1 देव वर्ष	= 360 मानव वर्ष

इस प्रकार ब्रह्मा का 1 दिन – 1000चतुर्युगी × 12000 देव वर्ष × 360 मानव वर्ष = 4320000000 मानव वर्ष। इसका अर्थ हुआ कि 4 अरब 32 करोड़ मानव वर्ष वह काल है जो – हिरण्यगर्भ (नेबूला) बनने के आरम्भ काल से लेकर इस पूर्ण सौर–जगत के प्रलय काल तक व्यतीत होगा।

एक चतुर्युगी के 4320000 मानव वर्षों को चार युगों सत् त्रेता द्वापर एवं कलि को क्रमश: 4:3:2:1 के अनुपात में बांटा गया है। इस गणना से –

सत्युग = 4320000 = 4/10 = 1728000 वर्ष

त्रेता युग = 4320000 × 3/10 = 1296000 वर्ष

द्वापर = 4320000 = 2/10 = 864000 वर्ष

कलियुग = 4320000 = 1/10 = 432000 वर्ष

बिश्नोई धर्म-संस्कार के एक प्रमुख अंग कलश स्थापना या कलश पूजा में इसी काल गणना का उल्लेख हुआ है।

इन्हीं सन्दर्भों में एक प्रश्न उठता है कि सृष्टि के प्रारम्भ के समय क्या था और उससे किस प्रकार यह सृष्टि बनी ? भारतीय दार्शनिक दृष्टि से ईशावस्य उपनिषद् का यह मन्त्र इसका खुलासा करता है कि -

(ओं) पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।

'वह ब्रह्म पूर्ण है। यह प्रकृति पूर्ण है। उस पूर्ण ब्रह्म से पूर्ण प्रकृति-कार्य जगत् उत्पन्न होता है। पूर्ण का पूर्ण ले लेने से अन्त में पूर्ण ही शेष रह जाता है। उत्पति का यह क्रम इस प्रकार से अभिव्यक्त किया गया है कि कारण या अव्यक्त प्रकृति में सत्व रज तथा तम तीनों गुण समवाय अवस्था में थे। गुणों की उस साम्यावस्था में प्रकृति स्थिर निश्चल और अविकारी थी।

अचानक वह साम्यावस्था भंग हुई और उस आदि रूप अव्यक्त प्रकृति से सर्वप्रथम महान् या ज्ञान का प्रस्फुटन हुआ।

ज्ञान से सात्विक तेजस और भूतादि ये तीन प्रकार के अहंकार बने।

सात्विक अहंकार से 5 ज्ञानेन्द्रियां तथा 5 कर्मेन्द्रियां बनी। तेजस से मन एवं अन्तःकरण बना। भूतादि से 5 तनमात्रा एवं 5 महाभूत बने। इस प्रकार अव्यक्त प्रकृति 25 रूपों में व्यक्त हुई। इस सम्पूर्ण कार्य जगत् में प्रकृति के ये 25 रूप परिव्याप्त हैं परन्तु परम पुरुष आत्मा ब्रह्म इनसे भिन्न है।

प्रकृति की साम्यावस्था भंग कैसे हुई ? इस सम्बन्ध में दो मत प्रमुख है।

सांख्य दर्शन के अनुसार कारण प्रकृति से कार्य जगत् का बनना प्रकृति के अपने स्वभाव के कारण नहीं प्रत्युत यह पुरुष (ईश्वर) की इच्छा से हुआ। परमाणु विज्ञान भी इस मत की पुष्टि करता नजर आता है जहाँ इल्कट्रोन प्रोटोन एवं न्यूट्रोन जब अपनी एक साम्यावस्था में रहते हैं तब कोई विस्फोट नहीं करते। निर्माण-विध्वंश कुछ भी नहीं परन्तु जैसे ही कोई बाहरी शक्ति उनकी साम्यावस्था को भंग करती है एक तेज विस्फोट होता है जो अपने में से अपार ऊर्जा का विस्फुरण करते हैं।

दूसरा मत वृहदारण्यक उपनिषद् के अनुसार प्रकृति के अपने ही स्वभाव

के कारण उसमें 'आत्मायुक्त' होने की प्रेरणा जागृत हुई और वह एक से दो हो गई।

गुरु जम्भेश्वर जी ने अपनी सबद वाणी में उद्धरण कान्हावत के एक प्रश्न के उत्तर में सृष्टि उत्पत्ति से पूर्व की स्थिति एवं अपनी उपस्थिति सम्बंधी ज्ञान को इस प्रकार से अभिव्यक्त किया है।

जद पवण न होता पांणी न होता न होता धर गैणारू।
चन्द न होता सूर न होता न होता गगंदर तारू।।
अजिया सजिया जीया जूंणी न होती।
तद होता एक निरंजण संभू कै होता धंधूकारू।।
बात कदो की पूछे लोई जुग छत्तीस बिचारू।
तांह परै रे और छत्तीसूं पहला अन्त न पारूं।।
म्हे तद पणि होता अब पणि आछै।
बलि-बलि होयसां कह कद-कद का करूं विचारूं।।

जब पवन पानी धरती आसमान सूर्य चन्द्रमा नक्षत्र तारे जड़-चेतन कुछ भी नहीं था केवल धुंध ही धुंध सर्वत्र व्यापक थी। उस समय केवल एक निरजित स्वयंभू थे। हे लोगों ! कब की बात पूछते हो ? मैं गत छत्तीस युग उससे भी पूर्व के छत्तीस युग तथा और भी पहले अनन्त युगों में मौजूद था अब भी हूँ और आगे भी होता रहूँगा। कब तक का विचार करूं ? काल की गणना से भी परे मेरा होना था है और रहेगा।'

बिश्नोई पन्थ का प्रारम्भ एवं बिश्नोई बनने की प्रक्रिया

बिश्नोई पन्थ के प्रवर्तक गुरु जम्भेश्वर हैं। इनका अवतरण नागौर राज्य के गाँव पीपासर में वि.सं. 1508 की भादवा वदि अष्टमी को ग्राम ठाकुर लोहटजी पंवार के घर हुआ।

वि.सं. 1542 में राजस्थान के इस मरुप्रदेश में भीषण सूखा (अकाल) पड़ा। अन्न-त्रिण के अभाव में यहाँ के गांव के गांव खाली होने लगे। लोग मालवा प्रदेश की ओर प्रस्थान करने लगे। उस संकट की घड़ी में गुरु जम्भेश्वर ने बीकानेर से 80 कि.मी. दक्षिण पूर्व में स्थित संभराथल धोरे के पास एक अकाल राहत शिविर की स्थापना की तथा मरु-भूमि से प्रयाण करते लोगों को अन्न-त्रिण देकर उनकी तथा उनके पशुधन की रक्षा की।

जब अगले साल वर्षा हुई। प्रदेश में सुकाल हुआ। लोगों के खेतों में अन्न-घास पैदा हुआ तब वे लोग राहत शिविर छोड़कर अपने-अपने गाँव जाने को तैयार हुए। वर्ष भर गुरु महाराज के संरक्षण में रहने तथा उनसे ज्ञान चर्चा एवं 'सबद' सुनने पर उनके मन में जाम्भोजी के प्रति श्रद्धा भक्ति और आदर भाव का जागृत होना स्वभाविक था। उन सब लोगों ने मिलकर गुरु महाराज से प्रार्थना की कि वे उन्हें कोई ऐसा रास्ता बतावें जिस पर चलकर वे अपने इस जीवन में स्वस्थ एवं सुखी रह सकें तथा मरणोपरान्त मुक्त होकर बैकुण्ठ धाम में जा सकें।

इसी सन्दर्भ में गुरु जम्भेश्वर ने वि. सं. 1542 की कार्तिक वदि अष्टमी को संभराथल धोरे पर कलश स्थापित कर लोगों को 'पाहल' पिला कर इस बिश्नोई पन्थ की विधिवत् स्थापना की। 'पाहल' पिला कर तथा उनतीस नियमों की राह बताकर बिश्नोई बनाने की वह प्रक्रिया वर्षों तक चलती रही। उस समय ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र चारण एवं मुसलमान तक 'पाहल' लेकर तथा उनतीस नियमों की राह पकड़कर बिश्नोई बने। कालान्तर में अन्य जातियों से बिश्नोई बनने का वह क्रम मन्द से मन्दतर होता हुआ समाप्त प्राय: हो गया है परन्तु बिश्नोई माता-पिता के घर जन्मी सन्तान आज भी अपने जन्म के तीस दिन बाद पाहल लेकर तथा उनतीस नियमों पर चलने के संकल्प के साथ ही बिश्नोई बन सकती है। बिश्नोई बनने का मूल आधार 29 नियमों की आचार संहिता का पालन और शुद्ध संकल्प स्वरूप 'पाहल' ग्रहण करना आज भी तथावत कायम है।

उनतीस नियम

तीस दिन सूतक, पाँच ऋतुवन्ती न्यारो।
सेरा करो स्नान, शील सन्तोष शुचि प्यारो।

द्विकाल सन्ध्या करो, सांझ आरती गुण गावो।
होम हित चित प्रीत सूं, होय वास बैकुण्ठै पावो।।

पाणी बाणी ईन्धणी, दूध इतना लीजै छाण।
क्षमा दया हृदय धरो, गुरु बतायो जाण।

चोरी निन्दा झूठ बरजियो, वाद न करणो कोय।
अमावस्या व्रत राखणो, भजन विष्णु बतायो जोय।

जीव दया पालणी, रूंख लीला नहीं घावैं।
अजर जरे जीवत मरै, वे वास बैकुण्ठा पावै।

करै रसोई हाथ सूं, आन सूं पला न लावै।
अमर रखावै थाट, बैल बधिया न करावै।

अमल तामाखू भांग, मांस मद सूं दूर ही भागै।
लील न लावै, अंग देखते दूर ही त्यागै।

उणतीस धर्म की आखड़ी, हृदय धरियो जोय।
जांभोजी किरपा करी, नाम बिश्नोई होय।।

वर्तमान सन्दर्भ में गुरु जम्भेश्वर प्रणीत उनतीस नियमों की सार्थकता

प्रसंग-आज से कोई पाँच सौ वर्ष पूर्व गुरु जम्भेश्वर भगवान् ने जिस बिश्नोई-पंथ का प्रवर्तन किया वह आज भी उतना ही प्रासंगिक एवं मानव मात्र के लिए उन्नति का सम्बल बना हुआ है। यह वह पंथ है जो जीवित को युक्ति और मरने पर मुक्ति प्रदान करता है। यह एक ऐसी मुक्त विचार-धारा है जो स्वतंत्रता समानता और आध्यात्मिक आस्था पर अवलम्बित है। इस पन्थ में जाति एवं जन्म के आधार पर ऊँच-नीच का कोई भेद-भाव नहीं है। मनुष्य उत्तम कर्म से उत्तम बनता है न कि तथाकथित उच्च कुल में जन्म लेने से। 'उत्तम-कुलि का उत्तम न होयबा कारण क्रिया सारूँ।' हिन्दू मुसलमान शूद्र तथा स्त्री-पुरुष का भेद करना व्यर्थ है। 'उत्तम मध्यम क्यों जाणीजै विवरस देखो लोई।' गुरु महाराज ने हिन्दू मुसलमान ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र तथा स्त्री-पुरुष सब को समभाव से अपने पन्थ पर चलने को उत्प्रेरित किया। भारतीय संस्कृति की समन्वयवादी परम्परा का जितना सफल एवं प्रभावी पालन इस बिश्नोई समाज में हुआ है वह केवल भारत ही नहीं बल्कि विभिन्न खेमों में बंटे समस्त संसार के लिए एक अति उत्तम प्रेरणा का स्रोत सिद्ध हो सकता है। जाति एवं धर्म के नाम पर आपसी भेद-भाव अलगाव तथा टकराव कितना व्यर्थ है यह वर्तमान बिश्नोई-पंथ को देखकर समझा जा सकता है। इस पन्थ में दीक्षित होने वाले चारों वर्णों तथा मुसलमानों की भी आज कोई पृथक् पहचान नहीं रह गई है। सब समान हैं। सब एक हैं। सबका एकसा सामाजिक वर्चस्व है। प्रश्न उठता है कि इस आधार पर विश्व का मानव एक पन्थ का राही क्यों नहीं बन सकता परिस्थितियों वश जो भेद-भाव पैदा हो गये हैं आज वक्त का तकाजा है कि उन समस्त भेद-भावों की दिवारों को हटा कर सम्पूर्ण विश्व-मानव समाज को एक परिवार की परिधि में समेटा जाए ताकि आपसी संघर्ष युद्ध खून-खराबा एवं बीमारी महामारी बेकारी भूखमरी अशिक्षा तथा अज्ञानता जैसी समस्याओं से सम्पूर्ण मानव समाज एक साथ मिल कर जूझ सके।

गुरु जम्भेश्वर भगवान् द्वारा निर्धारित निर्देशित नियमों का सम्बन्ध समस्त मानव जाति से है। जिस साम्प्रदायिक विद्वेष, पर्यावरण-प्रदूषण, शारीरिक एवं मानसिक अस्वस्थता, सामाजिक विघटन की त्रासदी को आज का विश्व-मानव भोग रहा है इसका पूर्वाभास गुरु महाराज ने पाँच सौ वर्ष पूर्व किया और इनसे त्राण पाने का एक सशक्त एवं सार्थक रास्ता बिश्नोई-पन्थ के रूप में प्रशस्त किया।

यह पंथ 29 नियमों की एक ऐसी आचार संहिता है जिसके अनुसार आचरण कर मनुष्य अपना तथा विश्व-कल्याण का लक्ष्य पा सकता है। ये नियम शाश्वत हैं। इनका सम्बन्ध किसी विशेष देश काल या वर्ग से न होकर समस्त संसार तथा शाश्वत मानव मूल्यों के साथ जुड़ा हुआ है। ज्यों-ज्यों समय आगे बढ़ता जा रहा है इनकी सार्थकता त्यों-त्यों और अधिक प्रभावी होती दृष्टिगत हो रही है। उनतीस नियमों में से एक-एक पर यदि विस्तार से प्रकाश डाला जाए तो एक-एक ग्रन्थ तैयार हो सकता है परन्तु यहाँ अति संक्षेप में एक परिचयात्मक ब्यौरा प्रस्तुत किया जा रहा है ताकि वर्तमान सन्दर्भ में इनकी उपादेयता को गंभीरता से अनुभव किया जा सके।

तीस दिन सूतक पाँच ऋतुवन्ती न्यारो।

1. **तीस दिन सूतक** - शिशु-जन्म के समय जच्चा-बच्चा तीस दिन तक पूर्ण विश्राम करें, पौष्टिक आहार लें तथा जच्चा प्रसूति गृह से बाहर न निकलें। वह पूर्ण-शैया-विश्राम लेती हुई घर का कोई कार्य न करें। प्रसूति कक्ष तथा उस घर को सूतक का घर मान कर बाहर के लोग कम से कम वहाँ जाएं। ज्योतिष विज्ञान की दृष्टि से तीस दिन एक ऐसा काल खण्ड है जिसमें तीस-तिथि सात वार तथा सत्ताईस नक्षत्र एक बार अपनी परिक्रमा पूरी कर लेते हैं। तीस दिन का यह समय जच्चा-बच्चा के स्वास्थ्य लाभ की दृष्टि से अति महत्त्वपूर्ण है। शिशु जन्म के समय माता के शरीर की अत्यधिक ऊर्जा खर्च होती है। कई मामलों में अतिरिक्त रक्त स्राव होता है तथा माता-शिशु की रोग-निरोधक क्षमता कमजोर पड़ जाती है ऐसी स्थिति में प्रथम तो उनका बाहरी सम्पर्क कम से कम हो ताकि किसी बीमारी के जीवाणु उनके शरीर में प्रवेश न कर सकें। तीस दिवस का यह प्रसूति-गृह प्रवास बाहरी प्रदूषण तथा घातक जीवाणुओं से रक्षा कवच का कार्य करता है। नवजात शिशु का शरीर जन्म के समय बहुत कोमल एवं नाजुक होता है उसे बाहरी सम्पर्क से बचकर रहने की तथा एक सामान्य शरीर-ताप की आवश्यकता रहती है जिसे वह निरन्तर अपनी माँ के शरीर के साथ रह कर ही पा सकता है।

तीस दिन तक नवजात शिशु निरन्तर अपनी माँ के साथ रह कर आवश्यकतानुसार दुग्धपान कर सकता है बाहरी सर्दी-गर्मी तथा घातक प्रभाव से अपनी रक्षा कर सकता है। चूंकि तीस दिन तक जच्चा को पूर्ण-विश्राम तथा पौष्टिक आहार मिलता है जिससे वह स्वयं स्वस्थ रहती है उसका शिशु स्वस्थ एवं सुन्दर बनता है।

अत: यह तीस दिन सूतक का नियम पूर्णत: वैज्ञानिक है व स्वास्थ्य की दृष्टि से एक ऐसा शाश्वत नियम बनने योग्य है जिसे विश्व-स्वास्थ्य-संगठन अपनाकर समस्त संसार की जच्चा-बच्चाओं का भला कर सकता है तथा आने वाले शिशुओं को एक स्वस्थ जीवन का आधार दे सकता है।

तीस दिन के पश्चात् इकतीसवें दिन शिशु के बाल कटवा कर उसे नहलाकर नवीन वस्त्र पहनाकर एवं माता भी नहा-धोकर नवीन वस्त्र धारण करती है और बिश्नोई-धर्म संस्कार विधि अनुसार सन्त-गायणाचार्य द्वारा होम जाप करवाकर पाहल पिला कर विष्णु मन्त्र सुना कर शिशु को बिश्नोई बनाया जाता है तथा पूरे घर को अभिमन्त्रित जल से सूतक मुक्त किया जाता है।

2. पाँच ऋतुवन्ती न्यारो - ऋतु धर्म का सम्बन्ध एक विशेष आयु वर्ग की प्रत्येक स्त्री के साथ जुड़ा हुआ है। संसार की हर नारी इस प्राकृतिक प्रक्रिया को सहन करती है। यह ऋतु-रक्त का स्राव सामान्यत: तीन दिन से लेकर पाँच दिन तक रहता है। इस समय के बीच सम्बंधित स्त्री निश्चित रूप से कुछ असामान्यता अनुभव करती है। शरीर टूटना कमर या सिर में दर्द होना आलस्य आना तथा मेला-रक्त गिरना इस काल विशेष की प्रमुख कठिनाइयाँ हैं।

इस नियम के अन्तर्गत यह व्यवस्था है कि ऋतु-काल में वह स्त्री पाँच दिन तक सामान्य गृह-कार्य से मुक्त रहे। जहाँ तक हो सके वह अकेली एकान्त में अपने शयन कक्ष में रह कर पूर्ण विश्राम करे। यह यथा-सम्भव कम से कम शारीरिक परिश्रम करे दूसरों के सम्पर्क से दूर रहे। जहाँ तक सम्भव हो किसी को छूवे तक नहीं। किसी मांगलिक कार्य होम-जाप तथा उत्सव त्यौहार में सक्रिय भागीदार न बने। घर के अन्य सदस्य भी उससे एक दूरी कायम रखें। एक तरह से यह समय प्रकृति द्वारा नारी देह के शुद्धिकरण का समय है ताकि वह दोष-मुक्त शरीर द्वारा गर्भ-धारण कर स्वस्थ शिशु को जन्म देने में सक्षम बन सके।

वैज्ञानिक दृष्टि से इस नियम का आधार शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य है। ऋतुमती स्त्री पाचं-दिन तक गृह कार्य से मुक्त रह कर उस नयी स्थिति का ठीक से सामना करने तथा शरीर एवं मन में होने वाली बेचैनी एवं दर्द को सहन करने में समर्थ हो सकती है। डॉक्टरों का मानना है कि ऋतुकाल में शरीर से कुछ ऐसी ऊर्जा किरणें निकलती हैं जो अन्य सामान्य स्त्री-पुरुषों के लिए घातक होती है। अत: पांच दिन तक ऋतुमती का अलग रहना सामाजिक एवं स्वास्थ्य की दृष्टि से अति आवश्यक है। यह एक शाश्वत एवं सार्वभौम नियम है। इसका सम्बन्ध किसी देश या समाज विशेष से न होकर संसार की समस्त नारी जाति के साथ जुड़ा हुआ है। समस्त विश्व समाज इसे अपनाकर नारी-जाति एवं मातृ शक्ति के कल्याण का भागीदार बन सकता है। वर्तमान समय में जहाँ नारी को पुरुष के बराबर हर क्षेत्र में कार्य करना पड़ रहा है इस नियम की उपादेयता और भी ज्यादा बढ़ गई है। प्रकृति तथा समाज ने नारी पर जो विशेष उत्तरदायित्व सौंपा है उसे मद्देनजर रखते हुए उसे हर माह पांच-दिन का यह विशेष अवकाश तो मिलना ही चाहिए। पांच-दिवस के पश्चात वह नहा-धोकर तरोताजा बन प्रसन्न तन-मन से अपना दायित्व निभाने में समर्थ बन सके यही इस नियम का सर्वाधिक महत्वपूर्ण लक्ष्य है।

सेरा करो स्नान शील सन्तोष शुचि प्यारो।।

3. सेरा करो स्नान : - नित्य प्रात:काल सूर्योदय से पूर्व स्नान करना अति हितकारी एवं उत्तम कर्म माना गया है। इससे तन में स्फूर्ति आती है मन प्रसन्न रहता है। रात भर विश्राम करने से नींद लेने से शरीर के करोड़ों रोम-द्वार बन्द हो जाते हैं या सुस्त पड़ जाते हैं प्रात: नित्य क्रिया से निवृत्त होने के पश्चात् स्नान करने से बन्द रोम-द्वार खुल जाते हैं। शरीर को मुक्त रोम-द्वारों से प्रात:कालीन शुद्ध-वायु ग्रहण करने का अवसर मिलता है। विभिन्न अंगों में रूका हुआ या मन्द रक्त संचार पुन: सामान्य गति से होने लगता है। शरीर का तापमान दैनिक कार्यों के लिए उचित गति पर आ जाता है। तन शुद्ध होता है मन ताजा बनता है। प्रकृति चिकित्सा विज्ञान मानता है कि प्रात:काल नियमित शीतल जल से स्नान करने वालों को सिरदर्द रक्त चाप या चर्म-रोग का शिकार नहीं होना पड़ता। गुरु महाराज ने कहा है 'तन-मन धोइये संजम होइये।'

सेरा स्नान करने के विषय में संसार भर के स्वास्थ्य चिकित्सक एक मत है कि त्वचा को मैल-मुक्त रोग रहित रखने के लिए नित्य स्नान करना तो आवश्यक है ही इसके साथ प्रात: काल के स्नान का विशेष महत्त्व है। सुविधा की दृष्टि से भी जहाँ रात भर विश्राम किया है वहाँ प्रात: नित्य क्रियाओं के साथ जोड़ने से ही इस नियम का पूर्णत: पालन करना सम्भव है। बिश्नोई मात्र का तो यह परम कर्त्तव्य है कि वह बिना स्नान किये खान-पान भोजन-नाश्ता न करें इसी कारण बिश्नोई स्नानी भी कहलाते हैं। वास्तव में इस नियम का सम्बन्ध भी अन्य नियमों की तरह मानव मात्र से है। वर्तमान समय में धूल धूआं गन्दगी और रोगाणुओं द्वारा ज्यों-ज्यों पर्यावरण प्रदूषित होता जा रहा है त्यों-त्यों सेरा स्नान का महत्त्व और भी ज्यादा बढ़ता जा रहा है।

4. शील सन्तोष शुचि प्यारो - शील सन्तोष और पवित्रता से प्रेम करो। इन गुणों का सम्बन्ध मानव मन की पावनता से है। शील सन्तोष और पवित्रता भारतीय संस्कृति का मुख्य आधार है। तुलसी का राम तो इसका जीवन्त उदाहरण है। शील का अर्थ है सद्वृत्ति विनम्रस्वभाव राग-द्वेष रहित चरित्र। सन्तोष के तो कहने ही क्या हैं यह तो वह औषध है जो असन्तोष हाय-तौबा ईर्ष्या अहंकार बेचैनी आदि कई मानसिक और शारीरिक व्याधियों को दूर करती है। 'सन्तोषी सदा सुखी' तथा 'जब आवै सन्तोष धन सब धन धूरि समान' जैसी समाज प्रचलित उक्तियाँ इसकी महत्ता की परिचायक है।

चाह गई,चिन्ता मिटी, मनवा बेपरवाह।
जिसको कछु न चाहिये, वह शाहों का शाह।।

शील और सन्तोष मानव चरित्र के आभूषण है। पवित्रता से प्रेम शील और सन्तोष का आधार है। यदि इस संसार को कभी स्वर्ग बनना है तो वह

शील-सन्तोष और पवित्रता के प्रति प्रेम द्वारा ही बन सकता है। आज संसार का कोई ऐसा सन्त या दार्शनिक नहीं होगा जो इन गुणों की महत्ता और मानव के लिए अनिवार्यता को मुक्तकण्ठ से स्वीकार न करता हो। इस नियम का आयाम विश्व-व्यापी है। सामाजिक आर्थिक धार्मिक और नैतिक जीवन का तो यह मुख्य आधार स्तम्भ है। शील सन्तोष और पवित्रता से हीन किसी सभ्य सुसंस्कृत मानव समाज की तो कल्पना भी नहीं की जा सकती।

द्विकाल सन्ध्या करो सांझ आरती गुण गावौ।

5. द्विकाल सन्ध्या करो - सूर्योदय और सूर्यास्त के साथ चिन्तन मनन एवं भक्ति भाव से परमात्मा के गुण गान करना इस नियम का प्रमुख लक्ष्य है। सन्ध्या दिन और रात का मिलन बिन्दु है। प्रात: व्यक्ति जब अपना दैनिक कार्यक्रम प्रारम्भ करता है अभी-अभी उदित हुए दिन में उसे क्या कुछ करना है जो कुछ करना है वह कृत्य उसे जीवन लक्ष्यों तक पहुँचाने में कहां तक सहायक है कहीं वह कुछ बिना सोचे समझे ऐसा तो नहीं करने जा रहा है जो उसके जीवनादर्शों से भिन्न हो। प्रात: काल की घड़ी सोच-विचार एवं चिन्तन-मनन की घड़ी है अत: व्यक्ति आत्मा-परमात्मा की साक्षी में अपना दैनिक कार्यक्रम इस प्रकार निर्धारित करे कि वह कहीं अपनी राह से भटक न जाए। मानव मूल्यों के विरुद्ध कोई कार्य न करें। यही सब सोचना विचारना अपने जीवन लक्ष्य को स्मरण करना तथा परमात्मा से शक्ति एवं मार्गदर्शन की प्रार्थना करने का नाम ही प्रात:काल की सन्ध्या है। इसी भान्ति रात्रि के प्रथम पहर में हर व्यक्ति को अपने दिन भर के कार्यों का लेखा-जोखा करना होता है। यह आत्मावलोकन का समय है। व्यक्ति को अपने दिन भर की कमाई की बेलेन्स-सीट देखने का समय है। प्रात: निर्धारित लक्ष्यों को उसने कहाँ तक प्राप्त किया ? उससे कहाँ भूल हुई ? उसके किसी आचरण ने किसी को कोई पीड़ा तो नहीं पहुंचाई ? अपने जीवन के एक अमूल्य दिन को उसने कहीं व्यर्थ में ही तो नहीं गंवा दिया ? उस पूरे दिन में क्या उसने कोई एक भी ऐसा शुभ पवित्र पुण्य कार्य किया है जो उसकी पूंजी बन सके ? सन्ध्या की बेलां शुभ भी स्मृति और अशुभ के लिए पश्चाताप का समय होता है। सन्ध्या का समय वह समय है जब नदियों का नीर स्थिर होने लगता है हवा भी पल भर रुक कर विश्राम लेती सी लगती है। समस्त वनस्पति एवं प्राणी जगत् एक विशेष मानसिक स्थिति में पहुंच जाता है ऐसे समय आत्म चिन्तन करना तथा परम सत्ता को याद करना अपने चरित्र का परिमार्जन करना है। द्विकाल की सन्ध्या एक तरह से जीवन के प्रारम्भ और अन्त की प्रतीक है ऐसे सन्धि काल में आत्म-चिन्तन करना अति गुणकारी लाभकारी एवं शुद्ध है।

'सांझ आरती गुण गावो' - यही अवसर परमात्मा को याद करने तथा देव-पुरुषों महापुरुषों एवं अपने आराध्य के प्रति पूजा अभिनन्दन का समय भी होता

है। जिसकी साक्षी में जिसका सम्बल लेकर व्यक्ति अपना दैनिक जीवन प्रारम्भ करता है सन्ध्या के समय उसी का आह्वान करना तथा उसके प्रति अपना श्रद्धाभाव व्यक्त करना उसकी विनम्रता एवं शील का प्रतीक है। अत: प्राय: लोग सन्ध्या के समय देवस्थानों में अपने आराध्य का आह्वान करते हैं तथा उनके महान गुणों का बखान करते हैं। देव पुरुषों या महापुरुषों का गुण-गान करना उनके द्वारा मानव मात्र के लिए किये गये उन महान कार्यों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करना है जिनके बल पर मानव आज मानव बना हुआ है। संसार का कोई ऐसा धर्म समाज नहीं होगा जहाँ सन्ध्या के समय लोग देवालयों अजान आरती या परमशक्तियों के गुण गान न करते हों। अत: गुरु महाराज का यह निर्देश है कि सन्ध्या के समय परम सत्ता के प्रति नतमस्तक हों उनका अभिनन्दन करो उनके गुणों का गान करो एक अति सर्वमान्य सार्थक सुझाव परिलक्षित होता है। मानसिक शक्तियों के विकास के लिए ऐसा करना आवश्यक है।

होम हित चित्त प्रीत सूं होय बास बैकुण्ठे पावो।

6. होम करना - नित्य होम यानी यज्ञ करना एक अति पवित्र कृत्य है। भारतीय वैदिक साहित्य में तो यज्ञ की महिमा एक निर्विवाद सत्य है परन्तु संसार की अन्य सभ्यताओं में भी यज्ञ का बड़ा भारी महत्त्व रहा है। सांस्कृतिक संदर्भ में यज्ञ सृष्टि संरचना का प्रतीक है। सूर्य समुद्र को किरणों की आहूति देता है समुद्र आकाश को जल-वाष्प आकाश धरती को वर्षा जल धरती प्रकृति को वनस्पति फसलें फल-फूल अनाज और ये सब ऊर्जा के रूप में प्राणी मात्र को जीवन की आहूति देते हैं। इस प्रकार संसार चक्र का एक क्रम पूर्ण होता है। अर्जित करना और अर्पित करना, पाना और देना यह हमारे सम्पूर्ण जीवन का क्रम है। हमारी सांस का आना-जाना तथा शरीर में रक्त संचार भी इसी यज्ञ भाव का प्रतिरूप है।

इसके अतिरिक्त गुरु महाराज ने अपने शिष्यों को होम की जोत में अपने नित्य दर्शन देने का भी वचन दिया है। यज्ञ का देवता अग्नि शक्ति का प्रतीक है शक्ति रहित संसार जड़ है। श्री जम्भेश्वर भगवान् द्वारा होम के साथ हित चित्त और प्रीत शब्दों का जुड़ाव अति सार्थक और सारगर्भित है। होम के साथ 'हित' यानी लोक कल्याण की भावना प्रमुख है। चित्त यानी यज्ञ की आहूति मनोयोगपूर्वक देना ही सार्थक है। प्रीत शब्द प्रकृति एवं शेष जगत् के साथ हमारे गहरे लगाव का प्रतिपादक है।

वर्तमान सन्दर्भ में वैज्ञानिक दृष्टि से यदि 'होम' की समीक्षा की जाए तो इसके द्वारा पर्यावरण शुद्ध होता है शुद्ध पर्यावरण वर्षा एवं जीवन-दायी तत्त्वों का दाता है। वैज्ञानिकों द्वारा शोध एवं परीक्षणों से यह भी सिद्ध हुआ है कि जो व्यक्ति नित्य गो-घृत से यज्ञ करता है तथा यज्ञ-धूम के सम्पर्क में रहता आया है उस पर परमाणु विकिरण का प्रभाव नहीं पड़ता। दो ऐसे व्यक्तियों को जिनमें एक नित्य

होम करता था तथा दूसरा ऐसा जो कभी यज्ञ नहीं करता था उन दोनों को परमाणु भट्टी के पास रखा गया पूर्व तथा पश्चात् के परीक्षणों से सिद्ध हुआ कि होम-धूम के सम्पर्क में रहने वाले व्यक्ति पर परमाणु-प्रदूषण का कोई प्रभाव नहीं पड़ा जबकि दूसरा व्यक्ति बुरी तरह से प्रभावित हुआ। इससे यह निष्कर्ष निकला कि यज्ञ का धुआं परमाणु-प्रदूषण-अवरोधक है। करोड़ों घरों में यदि नित्य यज्ञ हों तो सारा वातावरण शुद्ध बना रह सकता है यह धरती हरी-भरी एवं स्वस्थ रह सकती है। बिश्नोई समाज के स्त्री-पुरुषों का स्वस्थ एवं सुन्दर बने रहने का यह भी एक प्रमुख कारण हो सकता है। यज्ञ की अग्नि असंख्य रोगाणुओं एवं जीवन घाती बेक्टेरियाज को नष्ट करती है। यह भी देखा गया है कि नित्य यज्ञ करने वाला व्यक्ति मौसमी बुखार चर्म-रोग हृदय-रोग एवं कैंसर जैसी बीमारियों का शिकार नहीं होता। हमारे हर मांगलिक पर्व के साथ यज्ञ का विधान इसी तथ्य को उजागर करता है कि यज्ञ जीवित को स्वस्थ एवं सुखी जीवन तथा मरणोपरान्त बैकुण्ठ में वास देता है।

पाणी बाणी ईन्धणी दूध इतना लीजै छाण।

7. पाणी - छना हुआ जल कीट-कीटाणु जीव-जन्तु घास-फूस एवं कुछ सीमा तक रोगाणुओं से भी मुक्त होता है। स्वास्थ्य की दृष्टि से छना हुआ जल ही पीना चाहिए। बिना छना हुआ जल नेहरुवा (बाला) जैसी बीमारी का कारण बनता है। स्वास्थ्य विज्ञान की दृष्टि से बिना छना पानी अपने साथ कई घातक जीवाणुओं एवं विषाणुओं को मनुष्य के शरीर में पहुँचा देता है जो कभी-कभी उसके लिए जानलेवा भी हो सकते हैं। गुरु महाराज ने सैंकड़ो वर्ष पूर्व पानी की शुद्धता एवं छानने पर जोर देकर उसे बिश्नोई पंथ का एक नियम निर्धारित किया। पानी छानने का नियम मानव मात्र के लिए समभाव से अनुकरणीय है। आज की फिल्टर-प्रणाली पानी छानने की ही एक उत्तम विधि है।

8. बाणी - बाणी को छानना अर्थात् सोच-समझ कर शुद्ध सच्ची एवं प्रिय बात कहना। 'बाणी ऐसी बोलिए मन का आपा खोय। औरन को शीतल करे आप ही शीतल होय।' तथा 'हिए तराजू तोलकर तब मुख बाहर होय।' इन उक्तियों में कवि हमें शुद्ध पवित्र एवं अवसरानुकूल भाषा बोलने की प्रेरणा दे रहा है। उच्चरित शब्दों का अनुकूल प्रतिकूल प्रभाव सर्वविदित है। शब्द ब्रह्म है तो ब्रह्मास्त्र भी है। जहाँ एक ओर प्रिय अनुकूल शब्द सुनकर श्रोता का तन-मन प्रफुल्लित हो जाता है वहीं एक अप्रिय प्रतिकूल शब्द सुनकर उसके तन-मन में आग लग जाती है। एक शब्द हमें हंसा सकता है तो दूसरा रूला सकता है। एक हमें संसार का मित्र बना सकता है तो दूसरा दुश्मन ! मूर्ख तथा विद्वान का भेद वाणी का भेद है। 'छाणी बांणी' बोलना एक ऐसा सुनहरा नियम है जो व्यक्ति को घर बाहर देश प्रदेश सर्वत्र प्रिय एवं आदरणीय बना सकता है। जहाँ अणछांणी बांणी लड़ाई-झगड़ा द्वेष-शत्रुता

पैदा करती है वहीं सोच-समझ कर बोली गई वाणी प्रेम अपनापन आदर स्नेह जैसे मानवीय गुणों की परिचायक होती है। यह नियम सम्पूर्ण मानव समाज ही नहीं बल्कि पशु-पक्षियों पर भी लागू होता है। मधुर वाणी का मोल मानवेतर प्राणी भी समझते हैं। अत: छांणी बांणी की महिमा समस्त विश्व में असंदिग्ध है।

9. ईन्धणी - ईन्धन के छानने का अभिप्राय लकड़ी ऊपले-थेपड़ी आदि जो भी सामग्री चूल्हे में आग में डाली जाए उसे ठोक-पीट कर कीट-रहित बनाकर ही डाली जाए। ईन्धन के साथ कीड़ी मकोड़े कीट पतंगे तथा अन्य कोई भी जीव जल कर मरने से जीव-हत्या का पाप तो लगता ही है इसके अलावा पर्यावरण भी प्रदूषित होता है। जो जीव ईन्धन के साथ चूल्हे में जलेंगे उनकी दुर्गंध आस-पास बैठे लोगों को तो दुष्प्रभावित करेगी ही साथ ही पकने वाला भोज्य पदार्थ भी निश्चित रूप से प्रदूषित होगा। इसलिए गुरु महाराज का आदेश है कि ईधण को छाण कर काम में लें उसे देख-भाल कर कीट रहित बनाकर ही आग में डालें। अन्य नियमों की भान्ति यह नियम भी देश एवं काल की सीमाओं से परे सार्वदेशिक एवं सार्वकालिक भाव से अनुकरणीय है।

दूध के विषय में भी छानने का नियम प्रचलित रहा है। दूध को छानकर ही काम में लेना स्वास्थ्य तथा अन्य कई कारणों से उत्तम है। प्रथम तो दूध में दूध देने वाले पशु के रीवीं चींचड़ जुँएँ तथा बाल आदि गिर सकते हैं जिनका दूध के साथ गर्म होना या प्रयोग में लेना हर दृष्टि से अति हानिकारक सिद्ध होता है। इसके अलावा मक्खी मच्छर घास फूस भूर्ट का कांटा आदि कुछ भी पड़ सकता है। अत: हर हालत में दूध को भी छानकर काम में लेने का विधान रखा गया है।

क्षमा दया हृदय धरो गुरु बतायो जाण।

10. क्षमा - क्षमा मानव का आभूषण है। यह दाता एवं ग्राहता दोनों के लिए समभाव से प्रभावी तथा कल्याणकारी है। क्षमा दाता के चरित्र की महानता को प्रकट करने के साथ ही साथ प्रार्थी के हृदय को भी दिव्य भावों से ओतप्रोत करती है। उसे आत्म-विश्लेषण तथा आचरण परिशोधन का अवसर प्रदान करती है। इस गुण की महिमा से संसार का साहित्य भरा पड़ा है। क्षमा वास्तव में वह भाव है जो दाता को देवत्व प्रदान करता है और प्राप्ता को उपकृत करता हुआ उसे कृतज्ञता से ओत-प्रोत बनाता है। क्षमा बड़प्पन का मापदण्ड है। यह एक ऐसा शाश्वत मानव मूल्य है जो सामान्य व्यक्ति को भी राग-द्वेष से ऊपर उठा कर उसे एक सच्चे विश्व-मानव की श्रेणी में प्रतिष्ठित करता है। क्षमा से मानव का चरित्र अलंकृत होता है। गुरु महाराज ने अपने 'सबद' में भी कहा है कि 'जो कोई आवै हो-हो करता आपज हुइए पाणी।' अविनीत उज्जड़ के सम्मुख पानी सदृश विनम्र हो कर उसे क्षमा कर देना कितना बड़ा त्याग एवं संयम का प्रतीक है। क्षमा के प्रतिपालना से परिवार एवं समाज में व्याप्त तनाव तथा लड़ाई झगड़ों को कम किया

जा सकता है। क्षमा के बल पर कई घर टूटने से और कई सिर फूटने से बचाये जा सकते हैं। उद्दण्डता दिखाने वाले से क्षमा करने वाला बड़ा होता है इस भाव से विश्व युद्ध तक को टाला जा सकता है। क्षमा का नियम मानव मात्र के लिए अनुकरणीय एवं कल्याणकारी है।

11. दया - दया दाता के हृदय को परिमार्जित करती है। जहां क्षमा में हम किसी के प्रतिकूल आचरण या अपराधिक कृत्य के बदले में अपने हृदय को उसके प्रभाव से मुक्त रखने का प्रयास करते हैं और कहते हैं कि 'चलो हमने उसे क्षमा किया' दया दिखाने में इसका बिल्कुल उल्टा है। जिस के प्रति दाता दया दिखाता है वास्तव में वह उस दयनीय प्राणी के भाव को सर्वप्रथम स्वयं ग्रहण करता है और अपने आप को उस स्थिति में कल्पित कर जैसा वह उस स्थिति में दूसरों से अपने प्रति आचारण की अपेक्षा करता है वह दयनीय के प्रति वैसा ही आचरण करता है। दया पाने वाले से दाता का ज्यादा उपकार करती है। दया को धर्म का मूल आधार बतलाया गया है। 'दया धर्म को मूल है।'

इस नियम का आधार मानव आचरण का वह शाश्वत भाव है जिसके अनुसार हमें अन्यों के प्रति वैसा ही व्यवहार करना चाहिए जिस प्रकार के व्यवहार की अपेक्षा हम अपने प्रति अन्यों से करते हैं। दया हृदय में उपजने वाला हृदय में संजोकर रखने योग्य भाव है। प्राणी मात्र दया का पात्र है। दया का भाव मनुष्य के सभ्य सुसंस्कृत और मानवीय होने का प्रमाण है। दया लौटकर दाता के पास ही आती है। दूसरों के प्रति दया दिखाने का अर्थ है स्वयं दया पाने का हकदार बनना। गुरु महाराज ने दया का महत्त्व समझाते हुए पशु-पक्षी पेड़-पौधे स्त्री-पुरुष बाल-वृद्ध सब के प्रति दयाभाव रखने का निर्देश दिया है। वास्तव में क्षमा और दया दोनों ऐसे भाव है जिन्हें हर समय हृदय में धारण किए रहना ही सच्चा बिश्नोई होना है।

चोरी निन्दा झूठ बरजियो वाद न करणों कोय।

12. चोरी - जिस वस्तु पर दूसरे का स्वामित्व है उस पर छल छद्म या छिप कर स्वामित्व प्राप्त करना चोरी है। दूसरों का हक मारना तथा पराई वस्तु को अपनी बतलाना भी चोरी है। चोरी चरित्र का मैल है। चोरी से जग पीड़ित है। चोरी करना एक ऐसा सामाजिक अपराध है कि कई राज्यों में तो इसे हत्या करने से भी ज्यादा गंभीर मान कर कड़ी से कड़ी सजाएं दी जाती हे। चोरी आत्मा का कसाय है। चोरी तो चोरी ही है फिर चाहे वह विचारों भावों या साहित्य की ही क्यों न हो। बुद्ध महावीर ईसा मोहम्मद आदि सबने चोरी को एक निन्दनीय अपराध मानकर इसकी भर्त्सना की है। गुरु जम्भेश्वर भगवान् ने चोरी को बहुत ही बुरा आचरण घोषित कर इससे हर स्थिति में बचने का आदेश दिया है।

13. निन्दा - दूसरों के दुर्गुणों का उनकी पीठ पीछे बखान करना निन्दा है। निन्दा करने वाले स्वयं के लिए ही सर्वाधिक घातक है। निन्दनीय तो शायद

उससे अपना कुछ सुधार कर भी सके परन्तु निन्दा करने वाले को सिवाय दुश्मनी दुर्भाव और उपेक्षा के कुछ प्राप्त नहीं होता। निन्दा का पात्र यदि कोई अहंकारी एवं क्रोधी स्वभाव का होगा तो निन्दक के प्राणों पर भी संकट आ सकता है। यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि हर व्यक्ति अपने मन में ठीक समझ कर ही कोई कार्य करता है इस पर यदि कोई दूसरा उसके कार्यों में मीन-मेख निकालता है उसकी निन्दा करता है तो इससे वह मन ही मन अत्यन्त पीड़ा का अनुभव करता है। उसका मन आहत होता है। साधारण मनुष्यों की तो क्या बात करें बड़े-बड़े ज्ञानी ध्यानी और देवपुरुष भी अपनी निन्दा सहन नहीं कर सकते। निन्दा और आलोचना में अन्तर है। आलोचना छिपकर नहीं सब के सामने की जाती है और आलोचक चाहता है कि आलोच्य व्यक्ति उसकी आलोचना को सुन समझ कर अपने में सुधार लावें। आलोचना का लक्ष्य हमेशा सुधार करना रहता है जबकि निन्दा करने वाला छद्म वेश में निन्दनीय को दूसरों की नजरों में गिराना चाहता है। उसका अपमान करना ही उसका लक्ष्य रहता है। निन्दा को निन्दनीय समझ कर ही गुरु महाराज ने इसे एक प्रमुख निषेध नियम घोषित किया तथा अपने 'सबद' में कहा 'जम्पो विष्णु न निन्दा करनी।'

किसी के पीठ पीछे उसकी बुराई करना वास्तव में एक कायराना कृत्य है इसी कारण शुद्ध चरित्र का धनी व्यक्ति कभी किसी की निन्दा करना नहीं चाहेगा। निन्दा करने वालों की तुलना मैला साफ करने वालों से की गई है। निन्दा का मूल दुर्भावना और द्वेष है। छिप कर वार करना और किसी की चुगली करना समान है। यहां तक कि न्यायालय भी किसी की अनुपस्थिति में निर्णय नहीं सुनाता। अपराधी को भी जवाब देने का हक देता है जबकि निन्दक सामने वाले की अनुपस्थिति में उसके चरित्र पर लांछन लगाता है। यही कारण है कि निन्दा को चोरी से भी ज्यादा निन्दनीय माना गया है। किसी की निन्दा न करना शुद्ध आचरण का एक प्रमुख आधार स्तम्भ है।

14. झूठ - झूठ बोलना वाणी का अपमान है। एक ओर जहाँ हम शब्द को ब्रह्म का दर्जा देते हैं वहीं यदि हम झूठ बोलते हैं तो एक प्रकार से ब्रह्म को गाली देते हैं। सारा मानव व्यवहार उसकी सामाजिकता सच्चाई की नींव पर टिकी हुई है। झूठ बोलने वाला कभी आदर नहीं पा सकता। उसका कोई विश्वास नहीं करता। उसके चरित्र का कोई मूल्य नहीं। 'साच बराबर तप नहीं झूठ बराबर पाप।' झूठ का मोल दो कौड़ी भी नहीं।

किसी ऐसे सभ्य समाज की तो कल्पना भी नहीं की जा सकती जहाँ के सब लोग झूठ का व्यवहार करते हों। सच्चाई की महिमा और झूठ की भर्त्सना से संसार का साहित्य भरा पड़ा है। गुरु जम्भेश्वर भगवान् ने अपने शिष्यों को झूठ बोलने से ऐसा पाबन्द किया कि सच्च बोलना बिश्नोई मात्र का सहज गुण बन

गया। एक समय था कि न्यायालय भी बिश्नोई पन्थ के व्यक्ति द्वारा दी गई साक्षी को प्रमाणिक सत्य मानता था। वर्तमान समय में समाज के अन्य वर्गों के सम्पर्क में आकर स्वार्थवश कुछ बिश्नोई भी झूठ का सहारा लेने लगे हैं जो पूरे बिश्नोई ही नहीं मानव समाज के लिए लज्जा और शर्म की बात है।

15. बरजियो वाद न करणो कोय - जिस कार्य को करने का विधि-विधान नियम-धर्म निगम-आगम तथा युग पुरुष निषेध करते हैं उसे कभी नहीं करना चाहिए। करना और न करना - विधि और निषेध ही नीति तथा समाज-शास्त्र का प्रमुख आधार है। जिस कार्य को करना सुधिजन बुरा बतलाते हैं उसे सामान्यत: नहीं करना चाहिए। सर्वमान्य वर्जनाओं पर कुतर्क करना व्यर्थ है। अब गुरु महाराज व्यर्थ के वाद-विवाद को त्यागने की बात कहते हैं तो उनका आशय कभी किसी सार्थक विचार-विमर्श से बचने का नहीं है। विवाद शब्द के पूर्व लगा बरजियो उपसर्ग यही सिद्ध करता है कि वह कार्य न करो जो सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय की कसौटी पर खरा नहीं उतर रहा है। व्यर्थ के विवाद तथा वर्जनाओं में लगने वाली शक्ति को बचा कर सद्कार्यों एवं सद्विचारों की अभिव्यक्ति में लगाई जा सकती है। व्यर्थ के विवाद में उलझना कभी बुद्धिमता नहीं कहला सकती। गुरु महाराज ने अपने 'सबद' में भी कहा है 'वाद-विवाद फिटाकर प्राणी।' हे प्राणी व्यर्थ का विवाद त्याग कर रचनात्मक कार्य कर।

अमावस्या व्रत राखणो भजन विष्णु बतायो जोय

16. अमावस्या व्रत राखणो - जिस समय अमावस्या तिथि प्रारम्भ होती है तब से लेकर जब तक वह बीत नहीं जाती तब तक अन्न ग्रहण न करना कृषि आदि व्यावसायिक कार्य न करना पूर्णत: अवकाश रखना यहाँ तक कि चक्की चलाना दही मथना बैलगाड़ी ऊंट गाड़ी चलाना जैसे कार्य भी उस अवधि में न करना ही अमावस्या का व्रत रखना है। तीस दिन कार्य करने के पश्चात् एक दिवस का अवकाश स्वास्थ्य की दृष्टि से भी अति लाभकारी है। शरीर के भोजन तन्त्र को पूर्ण आराम मिलता है। श्रम में लगे ऊंट बैल आदि पशुओं को भी एक दिन का विश्राम मिलता है।

अमावस्या का दिन कई अन्य कारणों से भी अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। इस दिन सौर-मण्डल का नियन्ता सूर्य, पृथ्वी तथा चन्द्रमा तीनों एक विशेष स्थिति में रहते हैं। दिन को सूर्य एवं पृथ्वी के बीच चन्द्रमा होता है। अत: चन्द्रमा का अप्रकाशित मात्र पृथ्वी की ओर होने से चन्द्रमा रात को दिखलाई नहीं पड़ता इसी कारण अमावस्या की रात में हमें चाँद दिखलाई नहीं पड़ता। चन्द्रमा तो प्रकृति एवं प्राणी जगत के लिए जीवन तत्त्वों का उत्स है इस अवधि में जगत् को अपने अमृत से नहीं सींच पाता ऐसी स्थिति में जब मानव चन्द्रमा से प्राप्त होने वाली जीवन-शक्ति से वंचित रहता है उसे अपनी संचित शक्ति दैनिक व्यवसाय में न खर्च करके आत्म

चिन्तन में लगानी चाहिए।

ज्योतिष तथा नक्षत्र विज्ञान भी अमावस्या के दिन को विशेष महत्त्व देते रहे हैं। भारत ही नहीं बल्कि संसार के अन्य देशों में भी अमावस्या को विशेष दर्जा प्राप्त है। भारतीय वाङ्मय में तो इस दिन के व्रत का महत्त्व सर्वाधिक माना गया है। दिन-दिन क्षय होता चन्द्रमा अमावस्या के दिन पूर्णत: लुप्त होकर हमें संसार की नश्वरता का पाठ पढ़ाने के अलावा व्यक्ति चेतना का अन्त में विश्व चेतना में लीन हो जाने का सन्देश भी देता है। इन्हीं सब विचार बिन्दुओं के परिप्रेक्ष्य में अमावस्या का व्रत रखना तथा आत्म चिन्तन करना शारीरिक मानसिक एवं आत्मिक तीनों ही दृष्टियों से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। यह व्रत आस्तिक को आत्म-बल देता है तो नास्तिक को विश्राम एवं शारीरिक बल प्रदान करता है। एक ही दिन सम्पूर्ण समाज का सामुहिक चिन्तन-मनन पूरे वातावरण को अपनी ऊर्जा किरणों से युक्त बनाकर उसे 'चार्जड' करता है। अत: अमावस्या का व्रत रखना मनुष्य मात्र के लिए एक उपलब्धि भी है और लक्ष्य भी।

17. भजन विष्णु बतायो जोय - श्री जम्भेश्वर भगवान ने नाम जप के महत्त्व को दर्शाते हुए विष्णु नाम का स्मरण ही सर्वोत्तम बतलाया है। नाम जप के प्रभाव को सारा संसार मानता है और इसी सन्दर्भ में 'हरे राम हरे कृष्ण राम राम सीताराम ॐनम: शिवाय तथा इसी प्रकार अनेक देवी-देवताओं के नामों का स्मरण होता रहा है और जप करने वाले अनेकों प्रकार से लाभान्वित होते रहे हैं। गुरु महाराज ने सर्व नामों का सार अवतारों के आधार मूलदेव सदाशिव परम विष्णु का नाम जपना ही एक मात्र कल्याण का मार्ग बतलाया है। जैसे मूल को सींचना सम्पूर्ण वृक्ष को तृप्त करना है उसी प्रकार एक विष्णु का नाम जपने से सब के नाम आ जाते हैं। 'एकै साधै सब सधै सब साधै सब जाय।' के अनुसार भी एक विष्णु का नाम जपना ही सर्वाधिक मूल्यवान है।

ध्वनि और शब्द का प्रभाव केवल सुनने वाले पर ही नहीं पड़ता बल्कि उच्चारणकर्ता भी इससे प्रभावित होता है। ध्वनि या स्वर विशेष हमारे मस्तिष्क एवं नाड़ी तन्त्र को प्रभावित करता है आस-पास के वातावरण को प्रभावित करता है और जाप करने वाला आत्म-चेतना से साक्षात्कार करने में समर्थ बनता है। 'विष्णु' शब्द चेतना को ऊर्ध्वगामी बनाता है। आस्था और विश्वास के साथ केवल विष्णु नाम का स्मरण करना इसे ही जपना साधक को लक्ष्य तक पहुंचा देने वाला है।

नाम जपने का वैज्ञानिक आधार ध्वनि शास्त्र और ब्रह्म की अवधारणा पर अवलम्बित है। शब्द प्रभावित करता है। केवल मनुष्य ही नहीं प्राणी मात्र और पेड़-पौधे तक ध्वनि से प्रभावित होते देखे गये हैं। प्रार्थना स्तुति कीर्तन भजन संगीत इन सबका प्रभाव अर्थ के साथ-साथ ध्वनि का ही चमत्कार है। अत: ज्यादा कुछ न कह कर इस सम्बन्ध में इतना ही कहना चाहूंगा कि यदि कोई साधक मनोयोग से

आठ-पहर भी सांस-सांस के साथ विष्णु नाम का जाप करे तो उसे जो कुछ अनुभव होगा वह चमत्कारी शक्तिदायी और उसके लिए अविस्मरणीय रहेगा।

जीव दया पालणी रूंख लीला नहीं घावै।

18. जीव दया पालणी - प्राणी मात्र पर दया करना मानवीय भाव की रक्षा करना है। मनुष्य स्वयं एक प्राणी है और यह अपने प्रति दया भाव का आकांक्षी है। परिस्थिति विशेष में वह चाहता है कि दूसरे उस पर कृपावान हों तब उसे भी दूसरे प्राणियों के प्रति वैसा ही व्यवहार करना चाहिए जैसा वह स्वयं अपने प्रति चाहता है। जीव दया का सिद्धान्त अहिंसा का मूल आधार है। अहिंसा के प्रभाव एवं महत्त्व को बुद्ध महावीर ईसा एवं महात्मा-गान्धी जैसे सन्त पुरुषों ने एक स्वर में स्वीकार किया है।

गुरु जम्भेश्वर भगवान् द्वारा प्रणीत जीव रक्षा का यह नियम आज समस्त संसार के लिए अनुकरणीय बनता जा रहा है। पर्यावरण सन्तुलन की दृष्टि से जीवों की रक्षा अति आवश्यक बनती जा रही है। और जीवों की रक्षा तभी सम्भव है जब कानून के साथ व्यक्ति के मन में जीवों के प्रति दया भाव हो। पाँच सौ वर्ष पूर्व से आज तक बिश्नोई समाज वन्य प्राणियों की रक्षा करता रहा है। इसी जीव दया एवं जीव रक्षा के महत्त्व को स्वीकारते हुए भारत सरकार ने भी वन्य-जीव संरक्षण कानून बनाया है। अब तो केवल भारत ही नहीं बल्कि संसार के बहुसंख्यक देश शेर साँप जैसे हिंसक प्राणियों के प्राणों की भी रक्षा करने में सचेष्ट हैं। विश्व स्तर पर कई ऐसे संगठन बन चुके हैं जो प्राणी मात्र के प्रति दया भाव का प्रचार करते हैं और उनकी रक्षा के लिये हर स्तर पर उपाय भी करते हैं। गुरु महाराज के बनाये इस नियम ने राजस्थान के इस मरुप्रदेश के असंख्य जानवरों को शिकारियों के पेट में जाने से बचाया है। गोड़ावण मोर तीतर बटेर जैसे पक्षी हिरण रोझ सियार लोमड़ी सैही जैसे पशुओं की नस्ल खत्म होने से बचाने में इस नियम का बड़ा योगदान रहा है।

19. रूंख लीलो नहीं घावै - हरे वृक्ष न काटे जाएं। पेड़ों में प्राण होते हैं। पेड़ प्राणी जगत् को प्राण वायु देते हैं। पर्यावरण को प्रदूषण से बचाने में पेड़ों की भूमिका असंदिग्ध है। हरे वृक्ष कार्बन-डाई-ऑक्साइड ग्रहण करते हैं और ऑक्सीजन छोड़ते हैं जबकि प्राणी जगत् ऑक्सीजन लेता है और कार्बन-डाई-ऑक्साइड छोड़ता है। इस प्रकार वातावरण में इन गैसों का सन्तुलन बना रहता है। इसके अलावा गहरे-घने-हरे वन वायुमण्डल को नमी देकर वर्षा होने के कारण बनते हैं। गुरु महाराज ने सैंकड़ों वर्ष पहले पेड़ों के महत्त्व को जानकर हरा रूंख न काटने का नियम बनाया जिसे विश्व सरकारें अब बनाने जा रही हैं। आज यह बड़ी तीव्रता से अनुभव किया जा रहा है कि धरती पर तैंतीस प्रतिशत वनों का होना अनिवार्य है। इसी सन्दर्भ में अनेकों आन्दोलन चलाये जा रहे हैं। भारत का चिपको आन्दोलन जिसकी नींव आज से सैंकड़ों वर्ष पूर्व जोधपुर के खेजड़ली रेवासड़ी गांवों में वहां

के स्त्री-पुरूषों ने खेजड़ी वृक्ष काटने के विरोध में पेड़ों से चिपक कर अपने प्राण देकर डाली थी।

वर्तमान में पर्यावरण प्रदूषण के बढ़ते हुए भयंकर खतरों को अनुभव कर स्थान-स्थान पर हरे-वृक्ष काटने के विरोध में आन्दोलन चलाये जा रहे हैं। नये वन लगाने के लिए करोड़ों रुपये खर्च किए जा रहे हैं। बिश्नोई समाज ने अपने प्राण देकर भी पेड़ों की रक्षा की है परन्तु वर्तमान में कई स्थानों पर आर्थिक दबाव में आकर इस नियम की अवहेलना होना चिन्ता का विषय है।

गुरु जम्भेश्वर महाराज ने अपने शिष्यों को अग्नि-दाग के स्थान पर भूमि-दाग करने की व्यवस्था दी ताकि मुर्दों का अन्तिम संस्कार करने हेतु लाखों-करोड़ों पेड़ों के प्राण न लिये जाए और चिताओं का धूंआ वातावरण को प्रदूषित न करे अत: यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि 'रूंख लीलो नहीं घावै' का नियम वर्तमान में और भी ज्यादा प्रासंगिक बनता जा रहा है। इसका सम्बन्ध मानव एवं प्राणी जगत् के अस्तित्व के साथ जुड़ा हुआ है।

अजर जरै जीवत मरै वे वास बैकुण्ठा पावै।

20. अजर जरै - काम क्रोध ईर्ष्या मद और मोह ये पाँचों अजर हैं। इन्हें वश में रखना और स्वयं इनके वशीभूत न होना ही अजर को जरना है। जब ये प्रवृत्तियाँ मनुष्य के नियन्त्रण में रहती हैं तो उसे कर्म क्षेत्र में प्रवृत्त करती हैं उसकी उन्नति की साधक होती है और जब मनुष्य स्वयं इनके वश में हो जाता है तब ये ही उसके पतन का कारण बन जाती हैं। इन प्रवृत्तियों को दबाना या नष्ट न करके इनका उन्नयन करना है। गुरु महाराज ने बड़ा सार्थक शब्द प्रयोग में लिया है अजर-जरै अर्थात् इनका जरना इन्हें सहन करना अपने नियन्त्रण में रखना अति कठिन है परन्तु यह कठिनाई मनुष्य को झेलनी है। जीवत मरै अर्थात् इस शरीर में प्राण रहते मृत्यु को पराजित कर ले। मरण के भय से मुक्त होना और अहंकार को अहम् भाव को जीत लेना ही जीवित मरना और अजर जरना है।

मानव स्वभाव की ये प्रवृत्तियों संसार में अनियन्त्रित होकर क्या-क्या जुर्म नहीं ढहा रही हैं। यदि मानव इन पर विजय प्राप्त कर ले इन्हें जर ले तो वह स्वयं देवता होकर इस धरती को स्वर्ग बना सकता है। तभी तो कहा गया है-अजर जरने वाला जीवित मरने वाला बैकुण्ठ में वास करता है। जब तक ये विकार मनुष्य पर हावी हैं वह इनका दास बनकर नाच रहा है। पर जो इन्हें पचा लेता है इनका स्वामी बन जाता है वह अपने स्व केन्द्रित अहम् से ऊपर उठकर जीवित रहते हुए भी व्यक्तिभाव को परमात्मा भाव में विसर्जित कर देता है, उसके लिए ये ही प्रवृत्तियाँ बन्धनकारी न रहकर मुक्ति-दाता बन जाती हैं।

अत: ऐसे लोग जो इन पाँच शत्रुओं को अपने विवेक एवं आत्म-ज्ञान द्वारा देव भावों में विकसित कर लेता है वह इस देह में रहते हुए आध्यात्मिक स्तर पर जीता

है और मरणोपरान्त बैकुण्ठ धाम में जाता है। वर्तमान सन्दर्भ में जहाँ आज का मानव इन विकारों से पीड़ित होकर अपने मन का चैन और आत्मा की पहचान खो चुका है उसके लिए तो इस नियम का पालन करना सर्वोच्च प्राथमिकता बन गया है।

करै रसोई हाथ सूं, आन सूं पला न लावै।

21. करै रसोई हाथ सूं - अपने हाथों भोजन पकाकर ग्रहण करें दूसरे से पल्ला तक न लगावें। हाथ से खाना पकाना और दूसरे का पल्ला न लगने देना यह बिन्दु सर्वाधिक विवादास्पद रहा है। एक तरह से इसी नियम ने बिश्नोइयों को समाज में एक भिन्न पहचान दी है। दूसरे के हाथ का पका हुआ या छुवा हुआ भोजन न खाने के कारण बिश्नोई शेष समाज से एक ओर कटे हैं तो दूसरी ओर इन्होंने अपना पृथक् अस्तित्व भी विकसित किया है।

प्रश्न उठता है कि करे रसोई हाथ सूं का क्या अर्थ है ? रसोई तो हाथ से ही बनाई जाती है। क्या प्रत्येक व्यक्ति अपना खाना स्वयं पकाये ? एक घर में दस व्यक्ति हैं तो क्या दसों अपना-अपना खाना पकायेंगे ? फिर 'आन से पल्ला न लावे' का क्या अर्थ है ? आन कौन है ? सब कोई तो अपने हैं। 'अंजन मांहि निरंजन आछै घट-घट अघट रहा यूं' 'एकोब्रह्म द्वितीयो नास्ति' फिर आन कैसा ? गुरु महाराज ने जहाँ हिन्दू-मुसलमान ब्राह्मण-मोची सबको समभाव से 'पाहल' पिलाकर बिश्नोई बनाया तब फिर छूत-अछूत का तो प्रश्न ही पैदा नहीं होना चाहिए।

गुरु ज्ञान की दृष्टि से वे अछूत हैं जो गुरु महाराज द्वारा बताये नियमों का पालन नहीं करते। पवित्र जीवन नहीं जीते। पंथ से भटके हुए हैं। जिनका आचार-विचार खान-पान अपवित्र हैं। जो मांस-मदिरा का सेवन करते हैं। अनेकों प्रकार के नशे करते हैं ऐसे लोग 'आन' हैं। उनके हाथ का खाना स्वास्थ्य की दृष्टि से प्रदूषित एवं बीमारियां फैलाने वाला होता है। ऐसे लोगों के हाथ से पकाया हुआ खाना नहीं खाना चाहिए। 'जैसा खाये अन्न वैसा बने मन।'

29 नियमों की आचार संहिता का पालन नहीं करने वाले बिश्नोई-पंथ की दृष्टि से 'आन' हैं। अत: वैज्ञानिक एवं दार्शनिक दृष्टि से तन मन एवं आत्मा की पवित्रता के लिए शुद्ध आचरण वाले स्त्री-पुरुष के हाथ का बना खाना ही श्रेयस्कर है।

वर्तमान सन्दर्भ में जहाँ 'एड्स' जैसी असाध्य बीमारियाँ फैल रही हैं जहां किसी अन्य से हाथ मिलाना तक स्वास्थ्य की दृष्टि से घातक है वहाँ हर किसी के हाथ का पकाया भोजन खाना तो और भी ज्यादा हानिप्रद है। चर्म-रोग एलर्जी प्रदूषण जैसे अनेकों कारण इस नियम की सार्थकता सिद्ध करते हैं।

'अमर रखावै थाट बैल बधिया न करावैं।'

22. अमर रखावै थाट - भेड़-बकरियों के नर-बच्चों को बूचड़-खाना जाने से रोकने तथा अन्य मांसाहारी लोग उनकी हत्या न करें इसके लिए मेंढ़ों-बकरों

का 'थाट' रखवाने की व्यवस्था हो। कोई भी मेंढ़ा-बकरा न बेचे उनको 'थाट' में मिला दे, जहाँ समाज की ओर से उनके चराने-पिलाने की व्यवस्था की जानी चाहिए। चारागाह के लिए वन्य भूमि को अलग से रखना तथा मेढ़ों-बकरों की रक्षा करने जैसे कार्य की समयानुसार कठिनाई जानकर कालान्तर में बिश्नोइयों ने यह निर्णय लिया कि वे भेड़-बकरियों को अपने यहां रखेंगे ही नहीं। यही कारण है कि बिश्नोई-भेड़-बकरी पालक नहीं होते। वे केवल गाय भैंस और ऊंटों को ही पालतू पशु के रूप में रखते हैं। अहिंसा पर्यावरण तथा आर्थिक दृष्टि से भी नर मेढ़ों और बकरों की सुरक्षा करना आज भी युक्तियुक्त एवं लाभकारी है।

23. बैल-बधिया न करावै- गाय के बछड़ों को खसी (नपुंसक) न करावै। उस समय खसी करने का जो परम्परागत तरीका था वह बछड़ों के लिए अत्यन्त पीड़ादायी एवं कष्टकारक था। पशुपालकों के लिए अपने घर में जाये-जन्मे बछड़ों को जिन्हें वे दूध पिलाकर हाथ चटाकर अपनी सन्तान की भांति स्नेह से पालते हैं उन्हें अति पीड़ादायी ढंग से खसी कराना वास्तव में उनके लिए अति आत्म-पीड़क था।

किसान के लिए बैल तो चाहिए परन्तु अपनी गाय के जाये बछड़ों को स्वयं खसी करवा कर बैल बनाना इसके पीछे जुड़ी हुई एक भावात्मक संवेदनशीलता काम करती है जिसकी अनुभूति वही कर सकता है जिसने अपनी गाय के बछड़े को अपने वत्स की भांति पाल पोसकर बड़ा किया है। इस नियम का सम्बन्ध तर्क से नहीं संवेदना से है और संवेदनशीलता की शक्ति तर्क एवं बुद्धि से कहीं ज्यादा गहरी एवं प्रभावकारी सिद्ध होती रही है।

वर्तमान में जहाँ मनुष्यों को खसी करने करवाने वाले पुरस्कार के पात्र माने जाते हैं वहाँ बछड़ों को खसी न करवाने वाली बात शायद कई लोगों को बेतुकी लगे परन्तु जैसा कि मैंने पूर्व में उल्लेख किया है यह मामला संवेदना और आत्मीयता के साथ जुड़ा हुआ है। अब तो खसी करने के तरीके भी कष्ट रहित हो गये हैं परन्तु बिश्नाई मात्र को आज भी अपनी गाय के जाये या अन्य बछड़ों को खसी नहीं करवाना चाहिए। प्रजनन की शक्ति प्रकृति की देन है और इसमें दखल देना हितकारी नहीं घातक है और रहेगा।

अमल तमाखू भांग मांस मद सूं दूर ही भागै।

24. अमल 25 तमाखू 26 भांग तथा 27 मदिरा जैसे समस्त नशीले पदार्थों का सेवन न करें नशा करने से होने वाली हानियाँ सर्वविदित हैं। धर्म नियम कानून तथा स्वास्थ हर दृष्टि से नशा करना वर्जित है। नशा शरीर एवं आत्मा दोनों के लिए नाशकारी है।

शरीर तथा स्वास्थ सम्बन्धी नवीन वैज्ञानिक अन्वेषणों ने यह सिद्ध कर दिया है कि नशाकारी पदार्थों में किसी प्रकार के पोषक तत्व नहीं पाये जाते। इनमें

पाये जाने वाले विभिन्न प्रकार के जहर शरीर एवं मन को क्षति पहुंचाने वाले होते हैं। यही कारण है कि नशा करने वाले व्यक्ति की रोग-निरोधक क्षमता न्यून हो कर नष्ट हो जाती है। नशा करने वाला दमा तपेदिक कैंसर खाँसी रक्तचाप तथा हृदय जैसी जानलेवा बीमारियों का शिकार हो जाता है।

नशा विवेक की शक्ति का हरण करता है। अविवेक की स्थिति में व्यक्ति घर परिवार ही नही बल्कि सम्पूर्ण समाज के लिए घातक सिद्ध होता है। सामाजिक दृष्टि से नशा-खोर का सम्मान घटता है आर्थिक दृष्टि से धन बर्बाद होता है। धन की बर्बादी से गरीबी आती है और गरीबी सब कष्टों की जड़ है।

नशेबाज लोगों का पारिवारिक जीवन अशान्ति एवं मानसिक पीड़ाओं का शिकार होकर उनके बाल-बच्चों के जीवन को भी दुष्प्रभावित करता है। ऐसे घरों का वातावरण नरक तुल्य बन जाता है।

पाँच सौ वर्ष पूर्व गुरु महाराज ने जिन नशीले पदार्थों को वर्जित किया वर्तमान सरकार तथा विश्व समाज ने उनका सेवन कानूनी अपराध घोषित किया है। भारत सरकार ने नशीले पदार्थों को रखने तथा व्यापार करने वालों का आजीवन कारावास तक देने के नियम बनाये हैं। हेराइन-ब्राउनसूगर तथा स्मैक जैसे विभिन्न पदार्थ अफीम से ही तैयार किये जाते हैं।

प्राचीन तथा वर्तमान में संसार का कोई ऐसा दार्शनिक समाज सुधारक धर्मगुरु एवं मनोवैज्ञानिक नहीं हुआ है जिन्होंने नशा करने को त्याज्य न माना हो। अत: निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि अमल तमाखू भांग तथा मदिरा जैसे समस्त नशाकारी पदार्थों का त्याग करना ही श्रेयस्कर है।

28. मांस से दूर ही भागे - मानव जैसे सभ्य श्रेष्ठ प्राणी के लिए मुर्दा जानवरों का मांस भक्षण करना अति अशोभनीय निन्दनीय एवं अधार्मिक कृत्य है। देव तुल्य मानव देह पाकर मरे हुए पशुओं की मिट्टी खाना इतना घृणित है कि इसका वर्णन करने के लिए इतने ओछे शब्द तक नहीं मिल पा रहे हैं।

यह सर्वविदित है कि मांस में पाये जाने वाले पोषक तत्व उन पशु-पक्षियों द्वारा वनस्पति जगत् से ही प्राप्त किये जाते हैं। मांसाहारी पशु-पक्षियों का मांस न खाकर लोग शाकाहारी पशु-पक्षियों का मांस ही क्यों खाते हैं ? कारण मांसाहारी पशु-पक्षी तो स्वयं शाकाहारियों के मांस से वनस्पति जनित पोषक तत्वों को ग्रहण कर जीवित रहते हैं। अत: जिन पोषकतत्वों को हम प्रकृति से सीधे शुद्ध रूप में प्राप्त कर सकते हैं उन्हें अशुद्ध रूप में पशु-पक्षियों की बीमारियों के साथ घृणित मांस के द्वारा प्राप्त करें यह कितनी बुरी बात है।

मांसाहार हिंसा को प्रोत्साहित करता है हिंसा करना पाप है अपराध है। जंगली पशु-पक्षियों का शिकार वानिकी सन्तुलन को बिगाड़ कर पर्यावरण प्रदूषण का खतरा पैदा करता है। मानव द्वारा अन्यों के प्राण लेकर अपने प्राणों को पोषण

देना प्रकृति एवं प्राणीजगत् के प्रति इससे बड़ी कृतघ्नता और क्या होगी।

लील न लावै अंग देखते ही दूर त्यागै।

29. लील न लावै अंग - गुरु जम्भेश्वर का आदेश है कि मनुष्य नीले रंग का वस्त्र धारण न करें। प्रश्न उठ सकता है कि नीले रंग का वस्त्र धारण करने में क्या हानि है ? लीला या नीला रंग मौत का प्रतीक है जीवन के उपासक कभी मौत से रिश्ता नहीं रखते। नीला जहर का रंग है। हमें जहर की नहीं अमृत की कामना करनी है। विष नहीं अमृत, मौत नहीं जीवन।

वैज्ञानिक दृष्टि से नीला वस्त्र शरीर के लिए घातक है। नीला रंग मानव शरीर के लिए हानिकारक (अल्ट्रावाइलट) पराबैंगनी किरणों को परिवर्तित नहीं करता बल्कि शोषित करता है। ये पराबैंगनी किरणें स्वास्थ्य की दृष्टि से शरीर तथा मन दोनों के लिए घातक है और आज जब ओजोन का पर्दा फट रहा है तब तो नीला वस्त्र और भी ज्यादा हानिकारक सिद्ध होगा।

गुरु महाराज का आदेश है कि नीला वस्त्र नहीं पहनना है। गुरु आदेश के साथ आस्था का प्रश्न भी जुड़ा हुआ है। वर्तमान में ज्ञात दुष्प्रभावों के अलावा आने वाले कल में वैज्ञानिक और भी अन्वेषणों द्वारा पता लगा सकते हैं कि नीला रंग पहनने से और भी कई प्रकार के दोष है। शारीरिक मानसिक एवं आध्यात्मिक तीनों दृष्टियों से नीला वस्त्र पहनना हानिकारक है। मनुष्य को कभी भूल कर भी नीला वस्त्र धारण नहीं करना चाहिए। जहाँ स्वयं परीक्षण करना सम्भव न हो वहाँ अन्यों के अन्वेषणों पर विश्वास करना चाहिए जैसे हमने कभी पोटेशियम साइनाइट नहीं खाया फिर भी हम उसे भयंकर जहर मान कर उससे बचने का प्रयास करते हैं उसी प्रकार नीले रंग को घातक मान कर मनुष्य पहनने के वस्त्रों में भी इसका प्रयोग न करें।

गोत्रा चार

प्रसंग-गोत्राचार अग्नि-देव के कुल-गोत्र स्वरूप-स्वभाव तथा महिमा का परिचायक है। अग्नि आदि देव है। मानव सभ्यता के विकास क्रम में इसका अत्यन्त महत्वूपर्ण स्थान है। यह शक्ति का स्रोत एवं वनस्पति तथा प्राणी जगत् का मूलाधार है।

वैदिक साहित्य में अग्नि को देवता मान कर इसकी पूजा अर्चना की गई है। ऋग्वेद के हजारों सूक्त केवल अग्निदेव को समर्पित है। भारत ही नहीं बल्कि विश्व के अन्य सभ्य एवं सुसंस्कृत देशों में भी अग्नि की उपासना होती रही है। हर मांगलिक कार्य एवं पर्व के अवसर पर अग्नि की उपासना आवश्यक मानी जाती रही है। यज्ञ करना दीपक जलाना मोमबत्ती जालाना, रोशनी करना ये सब अग्नि के ही प्रतिरूप है।

बिश्नोई समाज में हर धर्म-संस्कार यज्ञ अग्नि की साक्षी में प्रारम्भ एवं सम्पन्न होता है। गुरु जम्भेश्वर भगवान् ने वि.सं. 1542 में सर्वप्रथम संभराथल धोरे पर होम करते हुए कलश-स्थापना कर पाहल मन्त्र द्वारा अभिमंत्रित जल पिला कर बिश्नोई पंथ का प्रवर्तन किया था। तब से लेकर आज तक हर मांगलिक एवं शुद्धिकरण संस्कार का प्रारम्भ होम तथा गोत्राचार द्वारा होता रहा है।

यह गोत्राचार किसी एक रचनाकार की सृजना न होकर विभिन्न स्रोतों से चयनित सूक्ति संकलन है। इसमें वेदों उपनिषदों तथा पुराणों से उद्धृत सूक्तों में 'उमा-महेश्वर' संवाद के रूप में अग्निदेव की महिमा का उल्लेख किया हुआ है। गोत्राचार के हस्त लिखित एवं मुद्रित रूपों में एकरूपता नहीं मिलती परन्तु यहाँ इसका सर्वमान्य रूप ही प्रस्तुत किया जा रहा है।

ॐ जदूवासरूपम्। पूज्यत्रम्। सामनिधिम्। गुणनिधिम्। आकाश पितरम्। सतारामम्। पंचम-पाताल मुखम्। वरूणते शिव मुखम्।।1।।

श्री पार्वत्युवाच-कस्मिन्मासे कस्मिन् पक्षे कस्मिन् तिथौ कस्मिन् वासरे कस्मिन् नक्षत्रे कस्मिन् लग्ने उत्पन्नोऽ सौ ? ।।2।।

- श्री महादेव उवाच-आषाढ़ मासे कृष्ण पक्षे अर्द्धरात्रौ मीन लग्ने चतुर्दश्यां शनिवासरे रोहिणी नक्षत्रे ऊर्ध्वमुखे दृष्टपाताले अगोचरन्नामाग्निः ।।3।।

श्री पार्वत्युवाच-क्वतस्य माता क्वतस्य पिता क्वतस्य गोत्रः कति जिह्वा प्रकाशिताः ? ।।4।।

श्री महादेवुवाच-अरणिस् माता वरूणष्पिता शाण्डिल्य गोत्र वनस्पति पुत्रम् पावक नामकम् वसुन्धरम्।।5।।

चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्तहस्तासो अस्य। त्रिधावद्धो वृषभोरोरवीति महादेवोमत्यां आविवेश ।।6।।

निखिलब्रह्माण्डमुदरे यस्य द्वादशलोचनम्। सप्त जिह्वा।।7।।

काली कराली च मनोजवा च सुलोहिताया च।
सुधूम्रवर्णा स्फुलिङ्गिनी विश्वरूपी च देवी लेलायमाना इति सप्त जिह्वा।।8।।

प्रथमस्तु घृतम् द्वितीये यवम् तृतीये तिलम् चतुर्थे दधि पचंमे क्षीरम् षष्ठे श्रीखण्डम् सप्तमें मिष्टान्नम् एतानि सप्त अग्नेर्भोजनानि।।9।।

एतैः सप्त जिह्वा प्रकाश्यन्ते ऊर्ध्वमुखाधोमुखाभिमुखैः सहाय्यं करोति। घृतमिष्टान्नादि पदार्थाः महाविष्णुमुखौ प्रविशन्ति। सर्वे देवा ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वरादयस्तृप्यन्ति।।10।।

अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् होतारं रत्नधातमम्।।11।।

अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनै रुतसदेवां एहवक्षति।।12।।

अग्निनां रयिमश्नवत्पोषमेव दिवे-दिवे। यशसं वीरवत्तमम्।।13।।

अग्नेयं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि। स इद्देवेषुगच्छति।।14।।

अग्निर्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्रश्रवस्तमः देवो देवेभिरागमत्।।15।।

यदंगदाशुषे त्वमग्ने भद्रंकरिष्यसि। तवेत्तत्सत्यमंगिरः।।16।।

उपत्वाग्ने दिवे-दिवे दोषावस्तर्धिया वयम्। नमोभरंतएमसि।।17।।

राजंतमध्वराणां गोपामृतस्यदीदिविम्। वर्धमानं स्वे दमे।।18।।

सनः पितेव सूनवे अग्ने सूपायनो भव। सचस्वा नः स्वस्तये।।19।।

सरलार्थ :

(1) सबमें बसने वाला वह अग्निदेव पूज्य, साम का भंडार, गुणों का आगर, आकाश का पिता, सर्व पदार्थों में रमण करने वाला, सबका रक्षक एवं लय करने वाला, श्रेष्ठ तथा कल्याण रूप है।

(2) पार्वती पूछती है - किस मास में किस पक्ष में किस तिथि में किस वार में किस नक्षत्र में किस लग्न में अग्नि देव उत्पन्न हुए ?

(3) श्री महादेव कहते हैं - आषाढ़ मास में कृष्ण पक्ष में आधी रात को मीन लग्न में चौदस को शनिवार को रोहिणी नक्षत्र में अग्नि देव उत्पन्न हुए। वह सर्वश्रेष्ठ एवं चराचर के दृष्टा रक्षक एवं लीन कर्त्ता हैं। एवं इन्द्रियातीत होकर

बाहर-भीतर सर्वत्र व्याप्त हैं।

(4) पार्वती पूछती है - इसकी माता कौन है पिता कौन है तथा इसकी कितनी जिह्वाये इस जगत् में प्रकट की गई हैं?

(5) महादेव कहते है। - अरणियाँ इसकी माता है वरुण पिता है शांडिल्य गोत्र है वनस्पतियां इसकी पुत्र हैं इसका स्वरूप पवित्र करने वाला तथा सभी समृद्धियों को धारण करने वाला है।

(6) यह चार सींग दो शीश तीन पांव सात हाथ वाला वृषभ देवों का देव है तथा यह तीन तरह से बन्धा हुआ अति तेज गर्जना करता हुआ मनुष्यों में प्रविष्ट हो गया है।

(7) सारा ब्राह्माण्ड इसके उदर में है। इसके बारह आंखें तथा सात जिह्वाएं हैं।

(8) इसकी सात जीभों के नाम हैं - काली कराली मनोजवा सुलोहिता सुधूम्रवर्ण स्फूलिंगिनी विश्वरूपा। ये लपलपाती हुई प्रकाशमान हैं।

(9) सात जिह्वाओं वाला अग्निदेव सात प्रकार के जिन भौज्य पदार्थों को ग्रहण करता है वे - (1) घृत (2) जौ (3) तिल (4) दही (5) खीर (6) श्रीखंड एवं (7) मिठाइयाँ।

(10) इस भोजन से सात जिह्वाएं प्रकाशित होती हैं। जो ऊपर नीचे सम्मुख सब तरफ से मनुष्यों की सहायता करती है ये घी मिष्टान्न आदि पदार्थ महाविष्णु के मुख में प्रविष्ट कराती है जिससे सभी देव ब्रह्मा विष्णु महेश आदि तृप्त होते हैं।

(11) ऋषि कहते हैं - मैं उस अग्नि की स्तुति करता हूं जो पुरोहित है यज्ञ का देवता है यज्ञ का अधिष्ठाता है तथा सभी समृद्धियों का श्रेष्ठ धारक है।

(12) अग्नि प्राचीन ऋषियों द्वारा स्तुत्य है तथा नवीन ऋषियों द्वारा भी पूज्य यह देवों को यहां बुलाता है।

(13) अग्नि द्वारा उपासक, ऐसी समृद्धि को प्राप्त करते है जो दिनोदिन बढ़ती रहती है, यशस्वी होती है तथा शक्ति से परिपूर्ण रहती है।

(14) हे अग्नि ! जिस यज्ञ के चारों ओर तुम हो वह देवताओं के बीच पहुंच जाता है।

(15) जो अग्नि आह्वान करने वाला है दिव्य संकल्प शक्ति से सम्पन्न है अस्तित्ववान है तथा विभिन्न प्रकार की श्रुतियों से युक्त हैं वह अग्नि देव अन्य देवताओं के साथ यहां आये।

(16) हे अग्नि ! जो कल्याण तुम हवि देने वाले के लिए सिरजते हो वही परम सत्य है तथा वह तुम्हारा ही है।

(17) हे अग्नि ! हम अपनी बुद्धि द्वारा तुम्हें नमन करते हुए प्रति-दिन एवं प्रतिरात्रि तुम्हारे पास आते हैं।

(18) हम ऐसे अग्नि देव के पास आते हैं जो - यज्ञ का अधिष्ठाता है सत्य का वर्चस्वी प्रतिपालक है तथा अपने सदन में नित्य-प्रति बढ़ता रहता है।

(19) इसलिए हे अग्नि ! जैसे पिता पुत्र के लिए सुप्राप्य है वैसे ही तुम हमारे लिए सुप्राप्य बनो । कल्याण के लिए हमें अपने आगोश में भर लो।

नोट : गोत्राचार पढ़ते समय यज्ञ कर्ता को चाहिए कि वह प्रत्येक मन्त्र का भाव ग्रहण करता हुआ पाठ करें। बिना अर्थ की अनुभूति किए मन्त्रों का पाठ एवं उच्चारण उतना प्रभावी नहीं हो सकता जितना अर्थ के साथ पठन-पाठन से हो सकता है।

कलस-पूजा मंत्र

प्रसंग-यह सृष्टि की रचना प्रक्रिया का विकासात्मक क्रम प्रस्तुत करने वाला महामन्त्र है। मौखिक परम्परा में प्रचलित है कि यह मन्त्र जाम्भोजी महाराज ने अपने शिष्य रेड़ाजी को कहा था।

अव्यक्त तथा कारण-प्रकृति के क्रमिक विकास में - आकाश वायु तेज (अग्नि) जल और धरणी इन पाँच तत्वों का उल्लेख इस मन्त्र में हुआ है। सनातन-वैदिक संस्कृति में हर मांगलिक कार्य पूजा भाव से सम्पन्न होता है। पूजा में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से इन्हीं पांच तत्वों की अर्चना रहती है। इनकी साक्षी पुरोहित को सम्बल देती है। यज्ञ वेदी के पास ईशान कोण में रखा घट पृथ्वी तत्व, घट में भरा जल-जलतत्व यज्ञ की अग्नि एवं दीपक की लौ-तेज तत्व तथा सर्वत्र व्यापक आकाश और वायु इन्हीं पांचों तत्वों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस प्रकार कलस-पूजा-मंत्र पाँच तत्वों से निर्मित समस्त सृष्टि की पूजा-अर्चना है। बिश्नोई समाज में इस मन्त्र का सर्वाधिक महत्त्व है क्योंकि जन्म विवाह शुद्धिकरण मृत्यु एवं जहां भी पाहल-मन्त्र द्वारा जल को अभिमंत्रित किया जाता है वहाँ सर्वप्रथम 'कलस' स्थापना एवं कलस-मन्त्र का विधिवत् उच्चारण आवश्यक है।

सर्वप्रथम एक कोरा मिट्टी का घट छने हुए शुद्ध जल से भरकर लाते हैं और यज्ञ-स्थल के पास निर्धारित स्थान पर बालू-रेत या अनाज के आसन पर रख देते हैं। घट में तांबे के दो पैसे डालते हैं घट के मुख पर नया सूती-कपड़े का गलना लगा देते हैं। इसके पश्चात् विधिवत् होम होता है गुरु वाणी के 'सबदों' का सस्वर पाठ होता है तत्पश्चात् किसी प्रौढ़-वरिष्ठ-पुरुष के हथेली-बद्ध हाथ उस कलस पर रखवाये जाते हैं और गुरु जम्भेश्वर के 'आदेश' शब्द से उस प्रौढ़-पुरुष की साक्षी में साधू गायणा या जो भी पुरोहित का कार्य कर रहा है वह इस मन्त्र को पढ़ता है जो इस प्रकार है -

(ओं) अकल-रूप मनसा उपराजी। तामा पाँच तत्व होय राजी। आकाश वायु तेज जल धरणी तामा सकल सृष्टि की करणी। ता समरथ का सुणों विचार सप्त द्वीप नव खण्ड प्रमाण। पाँच तत्व मिल इंड उपायो विगस्यो इंड धरणी ठहरायो। इंडे मध्ये जल उपजायो। जल में विष्णु रूप उपन्नो। ता विष्णु को नाभ कंवल विगसानो। तामा ब्रह्मा बीज ठहरानो। ता ब्रह्मा की उत्पत्ति होई। भानै घड़े सवारे सोई। कुलाल कर्म करत है सोई। पृथ्वी ले पाके तक होई। आदि कुम्भ जहां

उत्पन्नो सदा कुम्भ प्रवर्तते। कुम्भ की पूजा जे नर करते तेज काया भौखण्डते। अलील रूप निरंजनों जाके न थे माता, न थे पिता, न थे कुटुम्ब सहोदरम्। जे करे ताकी सेवा, पाप-दोष क्षय जायंते। आदि कुम्भ कमल की घड़ी अनादि पुरुष ले आगे धरी। बैठा ब्रह्मा बैठा इन्द्र बैठा सकल रवि अरु चन्द। बैठा ईश्वर दो कर जोड़। बैठा सुर तेतीसां कोड़। बैठी गंगा यमुना सरस्वती। थरपना थापी बाले निरंजन गोरख जती।

सत्रह लाख अठाइस हजार सतजुग प्रमाण। सतजुग के पहरे में सुवर्ण को घाट सुवर्ण का पाट सुवर्ण को कलस सुवर्ण को टको पाँच क्रोड्यां के मुखी गुरु प्रहलाद जी कलस थाप्यो। वै कलस जो धर्म हुयो, सो इह कलस हुइयो। सुख-शान्ति करियो दुख द्वन्द्व पासै टालियो। अपनी रजा करियो सेतान की बेरजा करियो, आई बलाय दफै करियो।

बारह लाख छयानवे हजार त्रेताजुग प्रमाण। त्रेताजुग के पहरे में रूपे को घाट रूपे को पाट रूपे को कलस सुवर्ण को टको। सात क्रोड्यां के मुखी राजा हरिचन्द तारादे रोहितास कलस थाप्यो। वै कलस जो धर्म हुयो सो इंह कलस हुइयौ।

आठ लाख चौसठ हजार द्वापर जुग प्रमाण। द्वापर के पहरे में तांबे को घाट तांबे को पाट तांबे को कलस रूपे को टको। नव क्रोड़यां के मुखी राजा युधिष्ठिर कुन्तीमाता द्रोपदी पांचों पांडव मिल कलस थाप्यो। वै कलस जो धर्म हुयो सो इहं कलस हुइयौ।

चार लाख बत्तीस हजार कलयुग प्रमाण। कलजुग के पहरे में माटी को घाट माटी को पाट माटी को कलस तांबे को टको। अनन्त क्रोड्यां के मुखी गुरु जम्भेश्वर कलस थाप्यौ। वह कलस जो धर्म हुयो सो इहं कलस हुइयौ। सुख-शान्ति करियो। दु:ख-द्वन्द्व पासै टालियो। अपनी रजा करियो। सेतान की बेरजा करियो। आई बलाय दफै करियो। गत का ग्वाल पृथ्वी का पाल भला हो सो करियौ।

यह संसार ज्ञानमय है। ज्ञान ही सत्य है और सत्य ही ब्रह्म है। यह जगत् ज्ञान से उत्पन्न होकर आखिर ज्ञान में ही लीन होता है। सर्वप्रथम सर्वशक्तिमान पारब्रह्म परमेश्वर स्वयंभू के मन में अनायास इस सृष्टि का प्रारूप (ब्लूप्रिन्ट) ज्ञान रूप में उत्पन्न हुआ। ज्ञान के स्तर पर जो कुछ घटित हुआ उसमें मन का स्थान सर्वोपरि था। सदा शिव ब्रह्म का मन चंचल हुआ उस एकाकी पुरुष ने एक से अनेक होने की मन में ठानी और सृष्टि का चक्का घूमने लगा। बुद्धि की सक्रिय शक्ति मन ज्यों ही कुछ करने को तत्पर हुआ कि उसने पांच तत्वों को अपने सृजन कार्य में आहूत किया और वे पांचों तत्व मन का सहयोग करने को राजी हो गये। कारण पांचों तत्वों की सहमति और सक्रिय साझेदारी से ही इस संसार का सृजन सम्भव हो सकता था। इस प्रकार आकाश वायु तेज (अग्नि) जल और धरणी इन पांचों तत्वों की रजामंदी से परम-चेतना के मन ने इस समस्त ज्ञान-इच्छा और

क्रियामय संसार की रचना की। उस पूर्ण परमेश्वर की विचार एवं कल्पना शक्ति अपार है जिसने सर्वप्रथम इस सात द्वीप और नव खण्ड रूप घट का निर्माण किया।

सर्वशक्तिमान परमात्मा ने पाँच तत्वों को मिलाकर एक अण्डाकार ठोस पिण्ड की रचना की। ज्यों ही वह अण्डाकार पिण्ड विकसित हुआ उसे इस पृथ्वी-रूप गर्भ में अवस्थित किया। उस अण्ड के मध्य में रासायनिक प्रक्रिया द्वारा जल उत्पन्न किया उस जल में विष्णु रूप उत्पन्न हुआ। पश्चात् उस विष्णु का नाभ-कमल विकसित हुआ। तब उस नाभ-कमल-पुष्प में निरन्तर विकासमान ब्रह्मा रूप बीज को स्थिर किया गया। इस प्रकार सर्वप्रथम वह स्वयंभू ब्रह्म उत्पन्न हुआ जो सृजन पालन और विनाश तीनों कार्य अपने तीन देव रूप-ब्रह्मा विष्णु और महेश के माध्यम से सम्पन्न करता रहता है। इस धरती से लेकर पवित्र स्वर्गलोक तक समस्त सृष्टि का ब्रह्मा ही एकमात्र सृजनहार कुम्भकार प्रजापति है। यह जीव प्रारम्भ में जिस देह घट में उत्पन्न हुआ है इसकी यह प्रकृति बन गई है कि यह अपने सृजक को भूल कर इस देह घट में ही निरन्तर लीन रहता है। जो साधक इस कुम्भ-रूप स्थूल शरीर के प्रति ही निष्ठावान होकर निरन्तर इसी की पूजा-सेवा में लगे रहते हैं जो केवल अपनी देह स्तर पर जीते हैं इस धरती पर उनका शरीर अत्यन्त बलवान तेजयुक्त और हृष्ट-पुष्ट दिखलाई पड़ता है। परन्तु वह आदि ब्रह्म जो नित्य निरंजन निराकार और समस्त लीलाओं से परे अलील रूप है - जिसके माता-पिता भाई-बन्धु कुटुम्ब-परिवार न कभी कोई था और न अब है जो कोई उस निरंजन लीला रहित ब्रह्म का ध्यान करता है निरन्तर उसी की सेवा में लगा रहता है उस जीव के जन्म-जन्मान्तर के समस्त पाप कर्म कट जाते हैं।

आदि काल में सर्वप्रथम कलश की स्थापना इस प्रकार हुई कि जब नाभ-कमल में घट-रूप कलश उत्पन्न हुआ तब अनादि पुरुष परमात्मा ने उस कलश को अपने सम्मुख रखा। उस वक्त ब्रह्मा इन्द्र समस्त सूर्य-तारे चन्द्रमा तैतीस करोड़ देवता गंगा-यमुना-सरस्वती ये सब साक्षी रूप वहां बैठे तथा शिव दोनों हाथों का सम्मपुट बना कर वहां यजमान रूप में विराजमान हुए और स्वयं निरंजन-गोरख स्वयंभू परमात्मा ने पुरोहित बनकर उस आदि कलश की स्थापना की। वही कलश स्थापन की परम्परा युगों-युगों से चली आ रही है।

सृष्टि की उत्पत्ति सम्बन्धी भारतीय परम्परा के अनुसार वर्तमान में चल रहे कल्प का वैवस्वत नामक सातवां मन्वन्तर चल रहा है इसकी 27 चतुर्युगियां व्यतीत होकर 28वीं चतुर्युगी के तीन युग (सत्-त्रेता-द्वापर) बीत कर चौथा कलयुग चल रहा है जिसके आज तक 5090 मानव वर्ष व्यतीत हुए हैं। इस 28वीं चतुर्युगी का प्रथम युग सतयुग जो 17 लाख 28 हजार वर्ष तक चला- उस काल खण्ड में पांच करोड़ जीवों को अपने साथ लेकर बैकुण्ठ धाम जाने वाले परम भक्त

प्रहलाद ने जो कलश-स्थापित किया उसमें सोने की बेदी सोने का पाट सोने का कलश और स्वर्ण का ही टका (मुद्रा) डाल कर उसकी प्रतिष्ठा की थी। पुरोहित कामना करता है कि भक्त प्रहलाद द्वारा कलश स्थापना में जो धर्म एवं कर्त्तव्य की पालना हुई, वैसा ही धर्म एवं कर्तव्य पालन इस कलश स्थापना द्वारा भी हो। परमात्मा सब को सुख-शान्ति प्रदान करे दु:ख-द्वन्द्व लड़ाई-झगड़े एवं संघर्षों से बचा कर रखें। शैतान की नाराजगी से रक्षा करें स्वयं कृपावन बना रहे तथा यजमान एवं भक्तजनों पर आने वाली हर कठिनाई एवं आफत को दूर करें।

काल क्रम से 12 लाख 96 हजार वर्ष के त्रेता युग में सात करोड़ जीवों को अपनी साक्षी में बैकुण्ठ धाम लेकर जाने वाले सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र उनकी पत्नी तारादे तथा पुत्र रोहिताश्व ने चांदी की वेदी चांदी का पाट चांदी का कलश एवं स्वर्ण-मुद्रा से युक्त जिस कलश की स्थापना की और उन्हें जो धर्म हुआ वही धर्म हमें भी इस कलश स्थापना द्वारा प्राप्त हो अर्थात् हमारा यह मांगलिक कार्य उसी प्रकार सम्पन्न हो।

8 लाख 64 हजार वर्ष के द्वापर युग में तांबे की वेदी तांबे का पाट तांबे का कलश चांदी की (टका) मुद्रा से नौ करोड़ जीवों का उद्धार करने वाले राजा युधिष्ठिर उनकी माता-कुन्ती पत्नी द्रोपदी एवं पांचों पांडव भाइयों ने मिल कर जिस कलश की स्थापना की उस कलश-स्थापना में जो पुण्य लाभ हुआ वैसा ही हमारे इस कलश-स्थापना द्वारा हो।

4 लाख 32 हजार वर्ष के कलयुग के समय में माटी की वेदी माटी का पाट माटी का कलश तथा तांबे की मुद्रा (टका) युक्त बारह करोड़ जीवों को अपनी साक्षी में मुक्ति देने वाले (मुझ) जम्भेश्वर ने जिस कलश की स्थापना की उस कलश स्थापना में जो धर्म एवं मांगलिक कार्य सम्पन्न हुआ हम (पुरोहित-यजमान) कामना करते हैं कि वैसा ही इस कलश स्थापना द्वारा हो। सुख-शांति रहे दु:ख-द्वन्द्व दूर हो परमात्मा राजी रहे शैतान भी प्रतिकूल न हो। परमात्मा आने वाली हर आफत को दूर रखे। समय का स्वामी पृथ्वी का पालनहार भगवान् (विष्णु) हमारा तथा प्राणी मात्र का भला करें।

पाहल-मंत्र

प्रसंग-बिश्नोई धर्म की दृष्टि से पाहल-मंत्र सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मंत्र है। सर्वप्रथम वि.सं. 1542 में श्री जम्भेश्वर महाराज ने संभराथल धोरे पर इसी पाहल-मंत्र द्वारा अपने शिष्यों को दीक्षित किया एवं बिश्नोई बनने का पथ प्रशस्त किया। इस मन्त्र द्वारा अभिमंत्रित जल ही पाहल कहलाता है और इसके आचमन का अर्थ है कि इसे ग्रहण करने वाला यह प्रतिज्ञा करता है कि वह गुरु महाराज द्वारा निर्देशित 29 नियमों की आचार संहिता का पालन करेगा। जैसे कोई राजनयिक या चयनित व्यक्ति अपने लिए विधि-द्वारा निर्धारित आचार संहिता के परिपालन की शपथ लेता है तभी वह उस पद का वैध अधिकारी बनता है उसी प्रकार उनतीस नियमों का पालन करने वाला भी पाहल लेने के पश्चात् ही बिश्नोई संज्ञा का अधिकारी बनता है। 'विष्णु मन्त्र कान जल छुवा गुरु कृपा से बिश्नोई हुआ।' समाज च्युत व्यक्ति भी पुनः पाहल ग्रहण करके समाज में मिल सकता है। जन्म के पश्चात् जब नवजात शिशु तीस दिन का हो जाता है तब इकतीसवें दिन उसे स्नान करवा कर पाहल पिला कर बिश्नोई बनाया जाता है अर्थात् कोई जन्म से नहीं संस्कार से ही बिश्नोई बनता है। उनतीस नियमों की प्रतिपालना करने वाला कोई भी व्यक्ति पाहल ग्रहण करके बिश्नोई बन सकता है। अग्नि-होत्र तथा कलश स्थापना मन्त्र की तरह यह पाहल-मन्त्र भी जन्म, सगुरा, विवाह, त्यौहार तथा मरण हर अवसर पर पढ़ा जाता है। बिश्नोई जन पाहल मन्त्रित जल को ग्रहण कर अपने को धन्य समझते हैं तथा उनतीस नियम पालन की प्रतिज्ञा को स्मरण करते हुए पुनः अपनी निष्ठा एवं विश्वास को प्रकट करते हैं प्रतिवर्ष होली के दूसरे दिन पूरा बिश्नोई समाज विधिवत् पाहल ग्रहण कर विश्नोई-पंथ के संचालक परम भक्त प्रहलाद के प्रति भी अपनी वचन बद्धता दुहराते हैं।

गुरु जम्भेश्वर भगवान् द्वारा प्रणीत पाहल-मन्त्र इस प्रकार है -

ओं नमो स्वामी शुभकरतार निर्तार भवतार धर्म धार पूर्व एक ओंकार। साधुनाम् दर्शनम्पूण्यम् सन्मुखे पाप नाशनम्। जन्म-फिरंता को मिले सन्तोषी शुचियार अपणो स्वार्थ ना करै पर पिण्ड पोषण हार। पर पिण्ड पोषणहार जीवत मरे पावै मोक्ष दवार। एहस पाहल भाइयो साधे लिवी विचार। एहस पाहल भाइयो थूले मेल्ही हार। एहस पाहल भाइयो ऋषि-सिद्धों के काज। एहस पाहल भाइयो ऊधरियो प्रहलाद। तेतीस कोटी देवां कुली लाधो पाहल वन्द। एहस पाहल भाइयो उधरियो हरिचन्द। पाहल लिन्ही कुन्ती माता होती करणी सार। साधु एहा भेंटिया मिल्यौ मोक्ष को द्वार। आवौ पांचों पाण्डवों। गुरु की पाहल ल्योह। पाहल सार न जाणहीं तिसे पाहल मत

द्योह। पाहल गति गंगा तणी जे करि जांणै कोय। पाप शरीरां झड़ि पड़ै पुण्य बहुत सा होय। नेम तलाई नेम जल नेम की जीमें पाहल। कायम राजा आवियो बैठो पांव पखाल। ऋषि थाप्यां गति ऊधरै देतां दिये पाहल। बन-बन चन्दन न अगरण सर-सर कमल न फूल। एकाएकी होय जपो ज्यों भागै भ्रम भूल। अठसठ तीर्थ कायं फिरौ न इण पाहल समतूल। गोवल-गोवल को-को धवल सब सन्ता दातार। विष्णु नाम सदा जीमें पाहल एह विचार। सतगुरु बोले भाइयो सन्त-सिद्ध शुचियार। मत्स्य की पाहल कच्छ की पाहल वराह की पाहल नृसिंह की पाहल बांवन की पाहल परसराम की पाहल राम-लक्ष्मण की पाहल कृष्ण की पाहल बुद्ध की पाहल निकलंक की पाहल सर्वाधार सर्वशक्तिमान सर्वेश्वर मेरी (जम्भेश्वर जी की) पाहल।

हे भक्तगण ! सर्वप्रथम तुम ब्रह्मा-विष्णु-महेश त्रिदेव के एकात्म स्वरूप शब्द-ब्रह्म ओंकार का ध्यान करो, उसे नमन करो क्योंकि वही तुम्हारे लिए शुभ-कल्याणकारी हैं। इस संसार सागर से पार न होने योग्य प्राणियों को भी वह भवसागर से पार उतारने वाला है। यही आदि शब्द-ब्रह्म '-ओंकार' सब धर्मों का एक मात्र आधार है। सन्तजनों का नाम और दर्शन दोनों ही पुण्यकारी है। साधुजन प्रसन्न होकर जिसके अनुकूल बन गये उनके समस्त पापों का नाश हो गया। चोरासी लाख योनियों के चक्कर में घूमने के पश्चात् जीव को मानव-देह प्राप्त होती है। यह मानव-देह धारण कर जो सच्चे गुरु की शरण में चला गया उसका बेड़ा पार हो गया। सच्चे गुरु की पहचान है कि वह सदा सन्तोषी और पवित्रता से प्यार करने वाला होता है। वह कभी अपने स्वार्थ में लिप्त नहीं होता, नित्य दूसरों के भरण-पोषण एवं कल्याण में लगा रहता है। जो कोई भक्तजन दूसरों के पालन-पोषण में अपना समस्त जीवन लगा देता है अर्थात् जो अन्यों के कल्याण हेतु जीता है दूसरों की भलाई करने में अपने प्राण त्याग करता है उसके लिये अवश्य ही मोक्ष का द्वार खुल जाता है। वह सदा-सदा के लिए जन्म-मरण के चक्कर से छूट जाता है। दूसरों की भलाई के लिए जीने-मरने वाले अन्त में मोक्ष द्वार से बैकुण्ठ धाम को जाते हैं । अतः हे शिष्य जनों ! सत्पुरुषों का विचार है कि सच्चे गुरु की शरण में जाना चाहिए क्योंकि केवल सद्गुरु की शरण पा कर ही कोई जीव इस स्थूल देह के स्तर पर जीना छोड़ सूक्ष्म आत्म तत्व की पहचान कर सकता है। अपने स्वरूप को पा सकता है।

हे भक्तजनो ! पारब्रह्म परमेश्वर भगवान् विष्णु की पाहल (शरण) लेने से बड़े-बड़े ऋषि और सिद्ध जनों के कार्य सफल हुए हैं। भगवान् विष्णु की ओट (पाहल) लेने से प्रहलाद भक्त का उद्धार हुआ और उनके साथी तेतीस करोड़ देव-कुल के जीव विष्णु की पाहल लेकर उनकी पूजा वन्दना द्वारा मुक्त हुए हैं। हे बन्धुजन ! भगवान् विष्णु की पाहल (शरण) ओट पाकर ही सत्यवादी हरिश्चन्द्र का उद्धार हुआ। पाण्डुओं की माता कुन्ती ने जब विष्णु (कृष्ण) की पाहल ली

तभी वह अपने कार्य में सफल हुई और हरि कृपा से उसे ऐसे सन्तजनों का साक्षात्कार हुआ कि उसे अन्त में मोक्ष का द्वार प्राप्त हुआ। उसने भगवान् की पाहल लेकर अपना जन्म और मरण दोनों सुधार लिया। कुन्ती ने अपने पांचों पाण्डु पुत्रों को भी विष्णु की शरण में जाने के लिए कहा क्योंकि वही परम गुरु सब का कल्याणकर्त्ता और मोक्ष-दाता है।

गुरु महाराज कहते हैं कि जो कोई इस 'पाहल का सार तत्व नही समझता उसे यह प्रतीक स्वरूप पिलाया जाने वाला - अभिमंत्रित जल-पाहल देना व्यर्थ है क्योंकि पाहल लेने का अर्थ हुआ विष्णु-शरण में जाने का दृढ़ संकल्प। जिसने इस संकल्प एवं प्रतिज्ञा को नहीं समझा उसके लिए यह तीन घूंट अभिमंत्रित-जल केवल पानी मात्र बन कर रह जायेगा। बिना समझे पाहल ग्रहण करना प्राप्तकर्ता के जीवन में कोई व्यवहारगत सम्परिवर्तन नहीं ला पायेगा।

भगवान् विष्णु की शरण में जाने का प्रतीक यह पाहल-जल अति पवित्र है। इसका गुण स्वभाव एवं प्रभाव गंगाजल के सदृश है। यह गंगाजल के समान ही पवित्र करने वाला तथा मुक्तिदाता है। किसी गुणी-ज्ञानी सन्तजन द्वारा अभिमंत्रित इस पाहल-जल को यदि कोई पूरे अर्थ ज्ञान और संकल्प के साथ ग्रहण करता है तो उसके शरीर के समस्त पाप झड़ जाते हैं तथा उसे अपार पुण्य-फलों की प्राप्ति होती है।

यह पाहल क्या है ? अब जरा इसका सार एवं प्रतीकार्थ समझने का प्रयास करें। उनतीस नियम रूप वह जलाशय है जिसमें शुद्ध पवित्र आचरण रूप जल भरा हुआ है तथा उनतीस नियमों को अपने मन में धारण करके उन पर अटल रहना ही पाहल-लेना है। केवल नियमों की ओट लेना मात्र पर्याप्त नहीं है बल्कि नियमों पर कायम रहना आवश्यक है। दृढ़ संकल्प मन वह राजा है जो अपने पैरों से कामनाओं की धूल धोकर इन उनतीस नियमों के आसन पर नित्य विराजमान रहता है। ऋषियों द्वारा स्थापित शुद्ध आचरण के मार्ग पर चलने से ही प्राणी का उद्धार होना सम्भव है। अत: सुपात्र जनों का ही पाहल लेना उचित एवं सार्थक है जो एकात्मभाव से अपने पवित्र आचरण पर दृढ़ रह सकें।

जैसे हर बन में चन्दन तथा अगर के सुगन्धित पेड़ नहीं होते, हर तालाब में कमल के फूल नहीं होते, उसी प्रकार हर देवी-देवता के पास मोक्ष-पद दिलाने की क्षमता नहीं होती। अत: विभिन्न देवी-देवताओं का चक्कर छोड़कर केवल एक आदि ब्रह्म-विष्णु का जाप करो ताकि तुम्हारी समस्त भ्रान्त धारणाएँ भूल और अज्ञान का नाश हो सके। अपने कल्याण के लिए अड़सठ तीर्थों मे भटकना व्यर्थ है क्योंकि भगवान् विष्णु की ओट (पाहल) के समान और कोई अन्य देवता मोक्ष-दाता नहीं है।

जैसे अनेक गायों में कोई-कोई ही पूर्णत: सफेद रंग की होती है जैसे

अनेक साधु वेश धारी लोगों में कोई-कोई ही सच्चा साधु त्यागी एवं दातार होता है उसी प्रकार जो प्राणी निरन्तर अपने मन में विष्णु नाम का जाप करता है वह सच्चा पाहल धारण करने वाला कहलाता है तथा पाहल लेने का यही सच्चा अर्थ है। हे भक्तजनों ! शीलवान तथा पवित्रता से प्रेम करने वाले साधक को ही सन्त एवं सिद्ध-पुरुष जानो।

इस जन्म-मरण के बन्धन से वही प्राणी मुक्त हुआ है और आगे भी हो सकता है जिसने बारम्बार विभिन्न अवतार धारण करने वाले विष्णु की शरण (पाहल) ली है। सदाशिव पारब्रह्म परमेश्वर के समय-समय पर होने वाले अवतारों की शरण ही सच्ची पाहल है जिनमें मत्स्य की पाहल, कच्छप की पाहल, वराह की पाहल, बावन की पाहल, नरसिंघ की पाहल, परशुराम की पाहल, राम-लक्ष्मण की पाहल, कृष्ण की पाहल, बुद्ध की पाहल, निकलंक की पाहल, तथा इन तमाम अवतारों के आदिरूप विष्णु के अवतार मेरी (जम्भेश्वर) पाहल मोक्ष दायी है।

टिप्पणी - पाहल शब्द मूलत: मरुभाषा के 'पाल' शब्द का हिन्दी रूपान्तर है। पाल का अर्थ है आड़ या ओट। जैसे पानी आगे पाल बांधना। देवता की ओट। यथा तालाब की पाल। पाहल मंत्र में भगवान विष्णु की शरण में जाना तथा उनके रक्षा कवच में रहने का दृढ़ संकल्प है। जिसने विष्णु भगवान् की ओट शरण पाल-पाहल ली उसका उद्धार निश्चित है ऐसा गुरु महाराज ने अपने शिष्यों को वचन दिया है। जैसे-कृष्ण ने अर्जुन को दिया था 'सर्वधर्मान परितज्य मामेकं शरणं ब्रज। अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिस्यामी मा शुच:।'

'सब धर्मों को त्याग कर, मुझ अकेले की शरण में आ, चिन्ता मत कर, मैं तुम्हें समस्त पापों से मुक्त कर दूंगा।'

बालक-मंत्र

प्रसंग-जब किसी बिश्नोई गृहिणी के गर्भ से शिशु का जन्म होता है तब उस घर में तीस दिन तक सूतक रहता है। इस तीस दिनो ंकी अवधि में जच्चा अलग कक्ष में रह कर पूर्णत: विश्राम करती है पौष्टिक आहार लेती है घर का कोई कार्य नहीं करती। सफाई का विशेष ध्यान रखा जाता है उसके कक्ष में कोई अन्य स्त्री-पुरुष प्रवेश नहीं करते नवजात शिशु को हर प्रकार के बाहरी सम्पर्क से दूर रखा जाता है। उस कक्ष विशेष में एक मिट्टी के खुले कूंडे या तगरे में गो-मूत्र रखा रहता है जो जच्चा-बच्चा की हर प्रकार के बाहरी संक्रमण से रक्षा करता है। कमरे में हवा-प्रकाश की व्यवस्था इस प्रकार रहती है कि तेज रोशनी एवं सर्दी-गर्मी का सीधा प्रभाव उन पर न पड़ सके। जब नवजात शिशु तीस दिन का हो जाता है तब इकतीसवें दिन जच्चा उसे विशेष तोर से स्नान करवाती है उसके सिर के बालों का मुंडन किया जाता है उसे नये वस्त्र पहनाये जाते हैं। पूरे घर की लिपाई-पुताई एवं सफाई की जाती है तथा जन्म-संस्कार करने वाला संस्कारकर्ता सन्त-गायणाचार्य आकर सर्वप्रथम विधि विधान से यज्ञ करता है गुरु जम्भेश्वर के 'सबदों' का सस्वर पाठ करता है कलश की स्थापना करता है पाहल करता है तत्पश्चात् वह 'बालक-मन्त्र' पढ़ता है जो मूल भाषा में इस प्रकार है -

'ओं शब्द गुरु देव निरंजन। ता इच्छा से भए अंजन। हर के हाथ पिता के पिष्ट विष्णु-माया उपजी सिष्ट। सप्त-धात को उपज्यो पिण्ड। नौ-दस मास बालों रहयो अघोर कुण्ड। अरध मुख ता उरध चरण हुतास। हरि कृपा से भया खलास। जल से न्हाया त्याग्या मल। विष्णु-नाम सदा निरमल। विष्णु-मन्त्र कान जल छुवा श्री जम्भ गुरु की कृपा से बिश्नोई हुवा।'

ॐ शब्द ही आदि ब्रह्म है वही सच्चा गुरु है वही निरंजन है उसी निरंजन की इच्छा से ही इस संसार का अंजन सृजन हुआ है। यह जो शिशु जन्मा है इसके सृजन में इस संसार के निर्माता उस निरंजन ब्रह्म का ही हाथ है उसी की कृपा एवं शक्ति से, पिता संज्ञा धारी पुरुष के माध्यम से यह वैष्णवी माया इस सृष्टि के रूप में उत्पन्न हुई है। यह शिशु विष्णु का ही रूप है। इसका यह स्थूल शरीर रस रक्त मांस अस्थि मज्जा शुक्र एवं रज-इन सात धातुओं द्वारा निर्मित हुआ है। यह सप्त-धात का बना पिण्ड रूप शिशु नौ या दस मास तक माता के गर्भ रूपी अंधेरे कुण्ड में रह कर विकसित हुआ है। जिस समय यह शिशु गर्भ में था उस समय इसका मुख

नीचे की तरफ और पैर ऊपर की तरफ थे अर्थात् माता के गर्भ में उल्टा लटका हुआ रहा है। भगवान् की कृपा से ही यह उस गर्भ-रूप अघोर कुण्ड से बाहर निकल कर मुक्त हुआ है। बाहर आने पर सर्व प्रथम इसे जल से स्नान करवाया गया। जल देव ने इसे मल रहित बनाकर पवित्र किया। अब यह विष्णु नाम सुनकर अपने तन-मन के समस्त मल-विक्षेप को त्याग कर पूर्णत: पवित्र और निरमल बन जायेगा।

जैसे ही शिशु ने विष्णु-मन्त्र: की ध्वनि अपने कानों द्वारा सुनी और विष्णु-मन्त्र से अभिमंत्रित जल- 'पाहल' का पान किया तथा मुंह-कान आदि अन्य अंगों से स्पर्श किया कि श्री गुरु जम्भेश्वर भगवान् की कृपा से वह बिश्नोई बन गया।

टिप्पणी - कोई शिशु केवल बिश्नोई माता-पिता के घर जन्म लेने से ही बिश्नोई नहीं बन जाता वह गुरु जम्भेश्वर द्वारा बतलाए संस्कारों द्वारा उनकी कृपा से - इस बालक-मन्त्र को सुन कर तथा 'पाहल' ग्रहण करके ही बिश्नोई बन सकता है। व्यक्ति जन्म से नहीं संस्कारों द्वारा अच्छा-बुरा बनता है। बालक-मन्त्र नवजात शिशु को 31वें दिन सुनाया जाता है। यह बिश्नोई के जीवन में संस्कारों का प्रथम सोपान है जिस पर वह ॐ शब्द की ध्वनि सुनता है जल-देव का पान करता है एवं संसार के अन्य जनों के सम्पर्क में आता है।

गुरु मंत्र

प्रसंग-सामान्यत: हर बिश्नोई परिवार में जन्में बालक-बालिका जब किशोरावस्था में पहुंचते हैं, उनकी समझ का विकास होता है, तब वे किसी न किसी बिश्नोई साधु को अपना लौकिक गुरु बनाते हैं। हवन कलश स्थापना गुरु वाणी का पाठ एवं पाहल जैसे नियमित विधि-विधान सम्पन्न करने के पश्चात् गुरु-पद धारण करने वाला साधु बालक-बालिका को 'गुरु-मंत्र:' देकर अपना शिष्य बनाता है। यद्यपि बिश्नोई के घर जन्मा और जन्म के इकतीसवें दिन 'बालक-मंत्र:' के साथ पाहल ग्रहण करने के पश्चात् प्रत्येक बालक-बालिका गुरु जम्भेश्वर के शिष्य बन जाते हैं और उन्हें ही अपना सच्चा गुरु मानते हैं, परन्तु सांसारिक स्तर पर भी वे किसी बिश्नोई-साधु द्वारा गुरु जम्भेश्वर प्रणीत 'गुरु-मंत्र' लेकर उनका शिष्य बनने में अपने को गौरवान्वित अनुभव करते हैं। यह गुरु मन्त्र बाल्य एवं किशोरावस्था पार करने के पश्चात् गृहस्थावस्था में प्रवेश करने का भी सूचक है अत: इस मन्त्र को गृहस्थ-दीक्षा मन्त्र भी कहा जाता है। यह संस्कार प्राय: विवाह पूर्व सम्पन्न किया जाता है। निगुरों का विवाह अच्छा नहीं मानते। गुरु धारण के पावन संस्कार के समय जो मन्त्र गुरु देता है वह इस प्रकार है -

'ओ३म् शब्द गुरु सुरत चेला। पांच तत्त्व में रहै अकेला। सहजे जोगी शून्य में वास। पाँच तत्त्व में लियो प्रकाश। ना मेरे माई ना मेरे बाप। अलख निरंजन आप ही आप। गंगा जमुना बहे सुरसती। कोई-कोई न्हावे बिरला यती। तारक मन्त्र पार गिराय। गुरु बतायो निहचल नाम। जो कोई सुमरे उतरे पार। बहुरि न आवै मेली-धार।'

'ॐ' यह ओंकार शब्द ही गुरु है। इसी शाश्वत ध्वनि के रूप में निराकार ब्रह्म प्रकट होता है यही एक मात्र सब का सच्चा गुरु है तथा परमात्मा का स्वरूप यह माया बद्ध कञ्चुकित आत्मा ही इस ध्वनि का श्रोता एवं इसका शिष्य है। यद्यपि शाश्वत सूक्ष्म ब्रह्म ही स्थूल रूप से आकाश वायु तेज जल और पृथ्वी इन पाँच तत्वों से बने शरीर के रूप में भाषित हो रहा है परन्तु वह आत्मा के रूप में निरन्तर एकाकी है। इन पंच-भूतों में रह कर भी वह इनसे मुक्त है। यह अपनी स्वभाविक प्रकृति से ही योगी है अर्थात् यह व्यक्ति चेतना-आत्मा आन्तरिक स्तर पर मूल रूप से विश्व-चेतना-परमात्मा से मिला हुआ है। परम चेतना से भिन्न कुछ भी नहीं है। सृष्टि रचने से पूर्व शून्य मण्डल में वास करने वाली विश्व-चेतना सदाशिव आदि विष्णु निरंजन ही इन पाँच तत्त्वों में व्यक्ति चेतना में प्रकाशित हो रहा है।

इस आत्म-चेतना का कोई अन्य माता-पिता नहीं है। यह अलख-निरंजन अपनी इच्छा से स्वयंभू बन कर इस संसार में पंच-भौतिक देह रूप में प्रकट हुआ है। गंगा यमुना और सरस्वती तथा ईड़ा पिंगला और सुषुम्ना ये तीनों नाड़ियां निरन्तर प्रवाहमान रह कर इस स्थूल शरीर के विभिन्न हिस्सों में प्राणवायु तथा चेतना का संचार करती रहती है। भृकुटि के बीच आज्ञा चक्र में जहाँ इन तीनों नाड़ियों का संगम होता है इस त्रिवेणी स्थल पर ध्यान योग में लीन कोई विरला साधक ही गगन मण्डल (सहस्रार दल कमल) से बरसने वाले अमृत जल में स्नान कर सकता है अर्थात् विभिन्न योग साधनाओं द्वारा प्राणवायु को जागृत बना कर सुषुम्ना द्वार से मूलाधार स्वाधिष्ठान मणीपुर अनाहत विशुद्ध आदि विभिन्न चक्रों को भेदती हुई चेतना, आज्ञा चक्र पर पहुंच कर सहस्रार दल-कमल से टपकते आनन्द स्वरूप अमृत-जल का पान कर सके ऐसी साधना हर कोई नहीं कर सकता। अत: परम चेतना-परम गुरु जम्भेश्वर ने अत्यन्त कृपावान होकर इस 'ओंकार' नामक मुक्ति-मन्त्र का जाप करने की युक्ति बतलाई है। गुरु महाराज द्वारा बतलाये हुए इस शब्द-ब्रह्म 'ओंकार' का जो कोई भी स्मरण एवं जाप करेगा वह निश्चित् रूप से इस संसार सागर से पार उतर जायेगा और उससे पुन: जन्म धारण करने वाली मैली-धार (योनी द्वार) से इस दु:खमय संसार में नहीं आना पड़ेगा।

निष्कर्ष - अष्टांग योग द्वारा कुण्डलिनी जागृत कर व्यक्ति-चेतना को परम-चेतना से एकाकार करना सामान्य जन के लिए सम्भव नहीं है। परन्तु ॐ शब्द का जाप करना प्रत्येक मानव के लिए सुगम है तथा निरन्तर ओंकार का स्मरण जाप करने से प्राण-शक्ति एकाग्र होकर व्यक्ति-चेतना को परम चेतना में लीन कर देती है। 'ॐ' ध्वनि के उच्चारण से सम्पूर्ण चेतना एकाग्र एवं घनीभूत होकर परम चेतना में लीन हो जाती है जो कि मानव-मात्र के जीवन का एक मात्र परम लक्ष्य है और इसी अवस्था का नाम मुक्ति है।

विवाह-संस्कार

प्रसंग- बिश्नोई समाज में विवाह सम्बन्धी संस्कार सामान्यत: प्राय: हिन्दू-समाज के समान ही होते हैं। परन्तु इन संस्कारों में रूढ़ियों आडम्बरों एवं पाखण्ड को कोई स्थान नहीं है। विवाह सम्बन्धी किसी भी संस्कार में मुहूर्त देखना-दिखाना जन्म-पत्री मिलाना पण्डितों पुरोहितों एवं ज्योतिषियों से सलाह-सूत का कोई प्रावधान नहीं है। जब चाहें तब ही शुभ मुहूर्त है। समय की अबाध गति में चौमासा तारे नक्षत्रों का कोई दखल नहीं है। विवाह को एक पावन सम्बन्ध समझ कर इसका निर्वाह किया जाता है। दोनों पक्ष समान रूप से उत्तरदायी होते हैं। विवाह को संस्कार और समझौता दोनों दृष्टियों से महत्व दिया जाता है। विवाहोपरान्त पति या पत्नी में से किसी का स्वर्गवास हो जाने पर पुरुष एवं स्त्री दोनों को यह अधिकार है कि यदि वे चाहें तो पुन: विवाह सम्बन्ध स्थापित कर अपना शेष जीवन बिता सकते हैं। बिश्नोई समाज में घटित वैवाहिक प्रक्रियाओं को हम निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर व्याख्यायित कर सकते हैं -

सगाई - पैतृक पक्ष में अपनी एवं दादी की गोत्र को टाल कर तथा मातृ पक्ष में माता नानी की गौत्र को टाल कर अन्य किसी भी बिश्नोई-जात-गौत्र में सगाई का रिश्ता किया जा सकता है। सगाई करने के लिए सामान्यत: कन्या पक्ष के लोग वर पक्ष के घर जाते हैं और वर पक्ष के भाई-बन्धुओं की उपस्थिति में वर को कुम-कुम का तिलक लगा कर रुपया-नारियल भेंट देकर रिश्ता तय होने को प्रमाणित करते हैं। दोनों पक्ष आपसी हेत मिलाप करते हैं। वर पक्ष अपने घर आये मेहमानों एवं बन्धु-बांधवों को गुड़ देकर विदा करता है। कन्या पक्ष की ओर से यह प्रक्रिया सम्पन्न करने के पश्चात् वर पक्ष के लोग कन्या के घर जाते हैं और उनके परिजनों के सम्मुख कन्या के लिए आटी-मोली बोरला तथा पगे लगाई (पांव-छूवन का नेग) देकर कन्या को स्वीकार करने की विधिवत् घोषण करते हैं। कन्या पक्ष का नारियल सगाई का प्रस्ताव और वर पक्ष की पगे लगाई उस प्रस्ताव की स्वीकृति समझी जाती है। यह सब सम्पन्न होने के पश्चात् कन्या पक्ष गुड़-बांट कर अपने मेहमानों एवं भाई-बन्धुओं को विदा करता है।

दोनों पक्षों द्वारा विधिवत् सगाई करने का यही रिवाज समाज में प्रचलित है परन्तु विवाह करने के लिए सगाई की ये रश्में आवश्यक नहीं है। कन्या और वर पक्ष के लोग केवल अपनी आपसी समझ सहमति से बिना किन्हीं औपचारिकताओं के भी मौखिक बात के आधार पर भी सगाई पक्की कर सकते हैं।

मौखिक सम्बन्ध स्थापन में सगाई टूटने की स्थिति में समाज के लोगों का कोई उत्तरदायित्व नहीं होता।

डोरा - दोनों पक्षों की आपसी सुविधा एवं सहमति के आधार पर कन्या पक्ष की ओर से विवाह की तिथि वार तथा समय निर्धारित किया जाता है। विवाह का समय निर्धारण प्राय: कन्या पक्ष की सुविधानुसार ही किया जाता है। कन्या पक्ष अपने भाई-बन्धुओं को अपने घर आमंत्रित करता है। समय निर्धारण के पश्चात् कच्चे सूत के धागों की दो लच्छियाँ बनाई जाती हैं इन लच्छियों पर डोरा करने के दिन से जितने दिन पश्चात् विवाह सम्पन्न होना है, उतनी गाँठे बांधी जाती है। गाँठे बांधने के पश्चात् उन डोरों को हल्दी में रंगा जाता है। इसे ही डोरा करना कहा जाता है। इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता है कि दोनों डोरों की गाँठे बराबर-बराबर हों। उन दों में से एक डोरा किसी विश्वासी व्यक्ति के हाथ वर पक्ष के घर भेज दिया जाता है। दूसरा डोरा उसकी सत्य-प्रति के रूप में कन्या पक्ष अपने घर में रख लेता है। डोरा करने के बाद कन्या के परिवारजन अपने भाई-बन्धुओं से विवाह में हर तरह से मदद पाने की आकांक्षा में गुड़ बाँट कर विदा करते हैं। उधर डोरा लेकर जाने वाला व्यक्ति वर पक्ष के गाँव पहुँच कर खेजड़ी (शमि) के हरे लूँख की टहनी के साथ वर के घर जाता है। हाथ में हरि टहनी देखकर ही गाँव के लोग निमन्त्रण के इस प्रतीक को 'डोरा' आया है। कन्या पक्ष की ओर से विवाह के लिए निमन्त्रण के इस प्रतीक को **डोरा आना** कहा जाता है। वर पक्ष के घर में किसी ऊँचे स्थान पर वह हरी खेजड़ी की टहनी रख दी जाती है। वह डोरा वर के पिता दादा या किसी वयोवृद्ध उत्तरदायी व्यक्ति को सौंप दिया जाता है। इसे 'डोरा-झालना' कहते हैं। यह एक तरह से वर पक्ष द्वारा बारात लेकर आने और वर का कन्या को निर्धारित समय पर विवाह करने की पूर्ण स्वीकृति देना है। विवाह का आमन्त्रण देने का उत्तरदायीत्व कन्या पक्ष का है और उस आमन्त्रण को स्वीकार करने का दायित्व वर पक्ष है। सगाई के बाद विवाह होने की स्थिति में यह दूसरा महत्त्वपूर्ण संस्कार है। डोरा लेकर आने वाले को उचित पुरस्कार देकर विदा किया जाता है।

विवाह-डोरा आने के बाद वर पक्ष अपने जातीय समाज की स्त्रियों को प्रतिदिन सन्ध्या समय गाँठ बधारने हेतु आमंत्रित करता है। स्त्रियाँ बधावा गाती हुई आती हैं और घर-आंगन में बैठ कर बनड़े गाती हैं। वर के हल्दी का उबटन लगा कर स्नान करवाया जाता है। इसे पीठी लगाना कहते हैं। इस अवसर पर स्त्रियों बालकों को गुड़ बाँटा जाता है। प्रतिदिन कन्या पक्ष की ओर से आये डोरे की एक गाँठ खोल दी जाती है इसे गाँठ बधारना कहते हैं। यह क्रम बारात चढ़ने तक चलता रहता है। जिस दिन वास्तव में विवाह होना है उससे एक या दो दिन पूर्व हरे फोग या पौधों की एक भारी (गठरी) गाड़ी पर रख कर लाई जाती है। इस मूनणी (हरे फोग

की गठरी) को स्त्रियाँ गीत गाकर आरती उतार कर बधारती हैं इसे 'मूनणी बधारना' कहते हैं। बनड़े गाना, वर के हल्दी का उबटन लगाना इसे बिनायक बैठाना एवं विवाह की रश्म का विधिवत् प्रारम्भ मानते हैं।

जिस समय बारात चढ़ती है उस समय भी वर को पीठी लगा कर स्नान कराने एवं दुल्हा बना कर सजाने संवारने के समस्त कार्य स्त्रियाँ मधुर विवाह-गीतों के साथ सम्पन्न करती हैं।

विवाह से पूर्व इसी प्रकार बधावा गाना गाँठ-बधारना बनड़े गाना बिनायक बैठाना उबटन-(पीठी) चढ़ाना ये समस्त कार्य कन्या पक्ष के घर भी होते हैं। बरात चढ़ने की पूर्व रात्रि में 'राति-जोगा' (गीत-रात) होता है। राति-जोगा वर तथा कन्या दोनों पक्षों के घर विवाह की ठीक पहली रात्रि में ही होता है। इसी रात को वर तथा कन्या दोनों के हाथों-पावों में मेंहदी रचाई जाती है। राति जोगे में स्त्रियाँ रात्रि भर गीत गाती है। सामान्य विवाह-गीतों के अलावा राति-जोगे के कुछ विशेष गीत भी होते हैं। जेतल काछबा, रूठी-राणी भटियाणी ढोला-मारू तथा मूमल-महेन्द्रा के लोक-प्रचलित प्रेमाख्यान भी गाये जाते हैं। वर तथा कन्या दोनों को निकट भविष्य में प्रारम्भ होने वाले वैवाहिक जीवन और उसमें व्याप्त प्रीत की मिठास एवं विरह की पीड़ा दोनों से परिचित कराया जाता है। यह एक तरह से मानसिक तैयारी है।

बारात जब कन्या पक्ष के गाँव या घर के सामने पहुँचती है तो सर्वप्रथम कन्या पक्ष के लोगों द्वारा कोई मधुर पेय या ठण्डा-मीठा जल पिला कर उनका स्वागत सत्कार किया जाता है। इसी बीच वर पक्ष के लोग खेजड़ी के वृक्ष की एक हरी टहनी कन्या के घर ले जाते हैं तथा यह घोषित करते हैं कि बारात आ चुकी है वर का स्वागत करने एवं कन्या का विवाह करने की तैयारी करें। टाला (हरी टहनी) पहुँचने के पश्चात् ही कन्या को हल्दी-तेल का उबटन लगाया जाता है जिसे तेल चढ़ाना कहते हैं। तेल-चढ़ी कन्या कुँवारी नहीं रहती उसका विवाह होना निश्चित है।

शेष बारातियों को किसी सुविधाजनक स्थान पर ठहरा दिया जाता है और वर अपने चन्द साथियों के साथ कन्या के द्वारा पर पहुँचता है इसे 'ढुकाव' कहा जाता है। वर के पीछे उसके अंग रक्षक के रूप में एक व्यक्ति लम्बी कांटेदार बोरटी (झाड़ी) की छड़ी लिए चलता या खड़ा रहता है। ज्योंही वर कन्या के बाहरी द्वार पर पहुँचता है बाहरी द्वार पर एक वन्दन-बार (मूंज की रस्सी) जिसमें हर पत्ते खेजड़ी के लूँख के गुच्छे आदि बन्धे होते हैं, बान्धी हुई होती है। वर के इस द्वार पर पहुँचने के पश्चात् कन्या का पिता तोरण की डोर के ऊपर से वह कांटेदार छड़ी सम्मान पूर्वक ग्रहण करता है जिसे छड़ी या कामड़ी बानना कहा जाता है। इसका यह भी भाव है कि अब वर की सुरक्षा का भार कन्या पक्ष पर है। उस छड़ी को घर

के किसी उच्च स्थान पर टांग दिया जाता है। इसी दौरान स्त्रियाँ स्वागत गान गाती हुई घर-आंगन में से पानी का एक बड़ा और एक छोटा दो कलशे एक साथ एक स्त्री के सिर पर रख कर बाहरी द्वार पर पहुँचती हैं। वहाँ वर खड़ा होकर तोरण की तणी के ऊपर से उस छोटे कलश को उतार लेता है बड़े कलश को वर का कोई साथी उतार लेता है दोनों तरफ पानी छिड़ककर वर तथा उसके साथियों का स्वागत सत्कार किया जाता है। वर द्वारा कलश उतारने को तोरण बानना कहा जाता है। अब वर अपने साथियों सहित कन्या के घर में प्रवेश करता है। वहाँ वर को पलंग पर बैठा कर कन्या की माँ वर के मस्तक पर कुम-कुम तथा दही का तिलक लगाती है आरती करती है इसे 'दही देना' कहा जाता हैं कन्या की माँ यहाँ एक कच्चे सूत के धागे से वर के एक घुटने से विपरीत कन्धे तथा इसी प्रकार दूसरे घुटने से विपरीत कन्धे का माप लेती है वर की आँखों में काजल (अञ्जन) डालती है। तोरण की तणी के ऊपर से वर द्वारा खड़े होकर दोनों हाथों से पानी का भरा कलश उतारना मस्तक पर तिलक लगाना अंगों का मापना कभी ये सब वर की शारीरिक परीक्षा के आयाम थे। परन्तु अब ये केवल परम्परा मात्र बनकर रह गये हैं।

इन तमाम औपचारिकताओं के सम्पन्न होने तक कन्या को तेल-पीठी से स्नान करावा कर वधू के रूप में सजा दिया जाता है।

उसी दौरान वर-पक्ष के प्रमुख लोग थालियों में सजा कर फल सूखे मेवे वधू के लिए वस्त्र श्रृंगार की सामग्री एवं गहनों सहित कन्या के आंगन में पहुँचते हैं इसे 'पडला' लाना कहते हैं। कन्या पक्ष के प्रमुख लोगों के सम्मुख वे सब थाल कन्या के माता-पिता को सौंप देते हैं ताकि सनद रहे कि वर पक्ष कन्या के लिए कितना और क्या-क्या गहने लाया है।

विवाह वेदी :- दो लकड़ी के बने पाटे पास-पास रखे जाते हैं उन पर मुलायम गद्दी रखी होती हैं। वहाँ वर एवं कन्या को बाएँ-दाएँ बिठाया जाता है। उनके सामने यज्ञ की वेदी रची होती है। कन्या के आँचल के पल्ले से वर की कमर में बंधे वस्त्र से गाँठ बांधी जाती है इसे **गँठ-जोड़ा** कहा जाता है। इसी समय कन्या के बाएँ हाथ में मेंहदी की पिंडोली रख कर उसका हाथ वर के दाहिने हाथ में पकड़ा दिया जाता है। इसे हथलेवा-जोड़ना कहा जाता है। यह सब प्रक्रिया यज्ञ वेदी के पास बैठे वर तथा कन्या पक्ष के प्रमुख लोगों की साक्षी में सम्पन्न होती हैं। वर-कन्या दोनों को यज्ञ वेदी के पास उत्तर दिशा एवं ध्रुव-तारे के सम्मुख मुँह कर बैठना होता है।

दोनों पक्षों के प्रमुख लोगों की उपस्थिति में अग्नि की साक्षी में विवाह संस्कार प्रारम्भ होता है। विवाह सम्पन्न कराने वाला सन्त-गायणाचार्य सर्वप्रथम विधि पूर्वक यज्ञ रचता है। सिगड़ी या वेदी में शुद्ध समिधा से गौ-घृत से होम

प्रारम्भ करना अग्निहोत्र-गोत्राचार पढ़ना कलश स्थापन करना कलश स्थापना का मंत्र पढ़ना पाहल मंत्र पढ़ना पाहल करना गुरु वाणी के 'सबदों' का सस्वर पाठ करना तत्पश्चात् कन्या एवं वर की ओर से प्रश्नोत्तरी पढ़ना एवं सब को सम्बोधित करते हुए कन्या को दाईं ओर से बाईं ओर बैठाना, जिसे पीढ़ी बदलना कहा जाता है। पीढ़ी बदलने के बाद यह घोषणा करना कि अब तक कन्या कुंवारी थी अब इसने वर के बाएँ अंग बैठ कर वधू बनना स्वीकार कर वधू का पद धारण किया है। अग्नि एवं दोनों पक्षों की साक्षी में वह स्वेच्छा पूर्वक कन्या से वधू बनती है। अपने उत्तरदायित्व को स्वीकार करती है। दूसरी ओर वर भी प्रमुख लोगों एवं अग्नि को साक्षी रख अपना उत्तरदायित्व ग्रहण करता है।

इस प्रक्रिया के सम्पन्न होने पर विवाह संस्कार करने वाला संत-गायणाचार्य राम-सीता शिव-पार्वती एवं कृष्ण-रूक्मणी का साखोचार सुनाता है तथा यह आशा प्रकट करता है कि यह वर-वधू की जोड़ी राम-सीता शिव-पार्वती एवं कृष्ण-रूक्मणी की भान्ति अपने दायित्वों को निभाती हुई आदर्श जोड़ी सिद्ध हो। संस्कार कर्त्ता इसी अवसर पर प्राय: अवतार-कथा चौजुगी आदिवंशावली विष्णु-सहस्रनाम जैसे कुछ अन्य पवित्र शब्दों को भी सुनाता है परन्तु यह सब बिश्नोई विवाह के मूल संस्कार में आवश्यक रूप से शामिल नहीं है। मूल रूप से अग्नि होत्र कलश-स्थापन पाहल गुरु-वाणी अग्नि की साक्षी गँठ-जोड़ा हथलेवा पीढ़ी बदलना तथा वर-वधू दोनों पक्षों के प्रमुख लोगों की साक्षी में विवाह-सूत्र में बंधने की सार्वजनिक स्वीकृति ये सब आवश्यक है।

विवाह-संस्कार सम्पन्न कराने वाला उस समय वर-वधू दोनों को ध्रुव तारे की ओर मुखातिब करते हुए कहता है कि 'आकाश में अटल खड़े उस ध्रुव-तारे को देखो। इस ध्रुव की तरह आप भी अपने वचनों कर्त्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों पर अटल अडिग रहना।'

इस विवाह प्रक्रिया के पूर्ण होने पर वधू की माँ या कोई अन्य महिला थाली में घी का दीपक रख जल-कलश से वर-वधू की आरती उतारती है। इसी अवसर पर वधू पक्ष की ओर से वर को बान-भराई जाती है भेंट स्वरूप वस्त्र आदि दिये जाते हैं जिसे पहरानी-देना कहते हैं।

मुकलावा:-विवाह तो कई बार अल्प आयु में भी सम्पन्न कर दिये जाते हैं परन्तु मुकलावा वर-वधू दोनों के युवावस्था पाने पर ही किया जाता है। अब तो सरकार ने नियम बना दिया है जिसके अनुसार 18 वर्ष की लड़की और 21 वर्ष का लड़का होने पर ही विवाह किया जा सकता है। अल्पायु में विवाह करना कानूनी अपराध है। पूर्व समय में परिस्थितियों के अनुसार विवाह अल्पायु में हो जाने पर भी वधू युवावस्था पाने से पूर्व वर के घर नहीं जाती थी। अत: विवाह और मुकलावा

दोनों भिन्न संस्कार रहे हैं। अब तो विवाह होने के बाद उसी दिन मुकलावा कर दिया जाता है।

यदि विवाह पहले हो चुका हो और वर मुकलावा लाने अपने ससुराल जावे तो वहाँ उसका बड़ा आदर सत्कार होता है। जंवाई को देवता तुल्य मानते हैं। रात्रि में स्त्रियाँ जंवाई के गीत गाती हैं। एक-दो दिन ससुराल में ठहरने के बाद वधू को वर के साथ विदा किया जाता है। इस अवसर पर जो विदाई के गीत गाये जाते हैं वे बड़े ही कारुणिक होते हैं। माता-पिता भाई-बहिन साथी-सहेलियों एवं अपनी जन्मभूमि से बिछुड़ती हुई कन्या जिस प्रकार स्नेह भीगी करुण पुकार करती है उन भावों भरे गीतों को सुनकर कठोर से कठोर हृदय व्यक्ति की भी आँखे एक बार आँसुओं से भीग जाती है।

वर के गांव की कांकड़-सीमा पर पहुँचकर वर-वधू दोनों गँठ-जोड़ा बाधकर धरती की पूजा करते हैं। वधू उस धरती को नमन करती है। जिसकी गोद में उसे रहना फलना-फूलना और अन्त में सदा-सदा के लिए समा जाना है।

'यही अंगना यही देहरी यही सजन की गाँव।
दुलहिन-दुलहिन टेरतां बुढ़िया होयसी नांव।।'

वर-वधू दोनों मन ही मन अपनी धरती की आन-बान एवं मर्यादा की रक्षा हेतु प्रतिज्ञा बद्ध होते हैं। इस अवसर पर एक नारियल चढ़ाया जाता है जो ग्राम-देवता को समर्पित होता है।

वर के गाँव पहुँचने पर वर पक्ष की स्त्रियाँ गांव के गवाड़ में से ही वधू को सम्मान पूर्वक लेने हेतु सामने आती हैं।

घर-गाँव की स्त्रियाँ कलशे में पानी भरकर लाती हैं, इस मांगलिक कलश को ईडूणी पर रखकर वधू के सिर पर रखा जाता है तथा वधू की ननद उसे हाथ से पकड़े रहती है। वर-वधू दोनों को पुन: गँठ-जोड़े में बांध कर आगे वर चलता है पीछे वधू चलती है। गाँव की स्त्रियाँ मुकलावे के गीत गाती हुई साथ-साथ चलती रहती हैं। वर के आंगन द्वार पर पहुँचने के पश्चात् वहाँ दोनों का स्वागत होता है। आंगन में क्रम से थोड़ी-थोड़ी दूरी पर सात थालियाँ रखी जाती हैं वर उन्हें अपनी छड़ी या तलवार की नोक से क्रम से दाएँ-बाएँ सरकाता जाता है वधू उन्हें उठाती जाती है। इस प्रकार वर के घर-आँगन में वधू का यह प्रथम पुरुषार्थ है, जिसमें प्रतीकात्मक ढंग से उसका शारीरिक और मानसिक परीक्षण होता है। वह शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ एवं मानसिक दृष्टि से समझदार है इस परख के बाद गँठ-जोड़ा खोल दिया जाता हैं। वधू को स्त्रियाँ अपने साथ कमरे में ले जाती है। वर को अभी एक परीक्षा और देनी पड़ती है। मिट्टी की बनी ढ़कणी के नीचे एक नारियल का गट्ट रखा जाता है जिसे वर को अपने पैर की एक चोट से ढ़कणी

सहित तोड़ना होता है। अगर वह एक चोट से ढकणी सहित नारियल को नहीं तोड़ पाता तो अपने साथियों में परिहास का पात्र बनता है। वहाँ कदम-कदम पर परीक्षा है। भारतीय दर्शन में पूरा जीवन एक परीक्षा है। यह ढकणी सहित नारियल तोड़ना भी एक प्रतीकात्मक प्रथा है जिसमें वर की क्षमता की परीक्षा होती है। इस प्रकार सगाई से प्रारम्भ होने वाली विवाह संस्कार की प्रक्रिया मुकलावा बधारने के पश्चात् वधू के गृह-प्रवेश पर सम्पन्न होती है।

साधु दीक्षा-मंत्र

प्रसंग- जब कोई गृहस्थ बिश्नोई साधु-संन्यासी बनना चाहता है वह पहले किसी साधु-संत मण्डली में शामिल हो उस मण्डली के साधु-संतों की सेवा करने में लग जाता है। साल छः मास में यदि वह अपनी जीवन चर्या को नये सांचे में ढाल लेता है तथा गुरु बनने वाले साधु की दृष्टि में वह सेवा-साधना एवं संयमित जीवन जीने में खरा उतरता है, भेख लेने की योग्यता रखता है तब अमावस्या आदि किसी शुभ पर्व पर साधु-मण्डली की साक्षी में विधिवत होम सबदवाणी का पाठ कलश स्थापना, पाहल-मन्त्र पढ़ कर सुनाता है एवं उसे अपनी ओर से एक भगवीं चादर उढ़ाता है जिसे भेष-देना या भेख लेना कहा जाता है। इस रस्म के पश्चात् शिष्य बने साधु का पूर्व गृहस्थ-नाम बदल कर उसका नया नामकरण किया जाता है। एक तरह से उसका वह नया जन्म माना जाता है। कानुनी दृष्टि से भी अब भेष देने वाला गुरु ही उसके लिए पिता तथा वह गुरु के लिए पुत्रवत् माना जाता है। बिश्नोई-साधु गृहस्थ नहीं होते। वे पूर्ण ब्रह्मचारी एवं संन्यासी का सा जीवन जीते हैं। ॐ विष्णु नाम का जाप करना, बिश्नोइयों के घर रात्रि-जागरण (जमा) देना होम करना पाहल एवं विवाह आदि संस्कार करवाना इनके मुख्य कार्य हैं। वह गुरु-शिष्य परम्परा पीढ़ी-दर पीढ़ी चलती रहती है। एक ही गुरु के कई साधु शिष्य हो सकते हैं जो आपस में 'गुरु भाई' कहलाते हैं। गुरु का शरीर शान्त होने पर सामान्यतः सबसे पहले शिष्य बनने वाला साधु उसका पाटवी चेला ही उसका उत्तराधिकारी माना जाता है। जिस मन्त्र द्वारा नये साधु बनने वाले बिश्नोई को दीक्षा दी जाती है वह इस प्रकार है -

ॐ शब्द सोहं आप। अन्तर्जपै अजप्पा-जाप। सत्य शब्द ले लंघे घाट। बहुरि न आवै योनी-बाट। परसै विष्णु अमृत रस पीवै। जरा न व्यापै जुग-जुग जीवै। विष्णु मन्त्र है प्राणाधार। जो कोई जपै सो उतरै पार। ॐ विष्णु सोहं विष्णु। तत्त्व स्वरूपी तारक विष्णु।'

ॐ शब्द ही स्वयं साक्षात ब्रह्म है। 'मैं स्वयं ही ओंकार ध्वनि रूप हूं' जो साधु-जन इस भाव से मन ही मन बिना कोई ध्वनि मुख बाहर निकाले अन्तरमन में इस शाश्वत अनहद अनाहत-नाद 'ॐ' का जाप करता है वह इस शब्द रूप सत्य के सहारे इस संसार-सागर से पार उतर जाता है। उसे पुनः योनी-द्वार से इस जन्म-मरण के रास्ते पर नहीं आना पड़ता। ऐसी जन्म-मरण बन्धन मुक्त आत्मा विष्णु-लोक में निवास करती हुई उन्हीं के सान्निध्य में अमृत-रस का पान करती

रहती है। उसे कभी वृद्धावस्था नहीं आती। वह युग-युगान्तर तक विष्णु लोक में वास करती है। अत: यह विष्णु-नाम का मन्त्र ही इस जीवन में एक मात्र प्राणों का आधार एवं लक्ष्य है। जो कोई भी निरन्तर इस मन्त्र का जाप करता है वह संसार-सागर से पार उतर जाता है। ॐ शब्द साक्षात् विष्णु का ही रूप है। ओंकार ध्वनि और विष्णु में कोई भेद नहीं दोनों एक ही हैं। यह मौन ध्वनि मन्त्र तात्विक दृष्टि से विश्व चेतना का ही पुञ्जी-भूत स्वरूप है। एक मात्र यह विष्णु-मन्त्र ही इस संसार से पार पहुंचाने वाला है।

निष्कर्ष - गुरु शिष्य को 'ॐ' शब्द ब्रह्म का रहस्य और विष्णु-मन्त्र का महत्त्व दर्शाता हुआ उसे बैकुण्ठधाम पहुंचने का एक मात्र सीधा सरल रास्ता बतलाता है जो केवल साधु के लिए ही नहीं बल्कि मनुष्य मात्र के जीवन का परम लक्ष्य है।

सन्ध्या-वन्दन (नवण मंत्र)

प्रसंग- एक बार ताँतू देवी ने गुरु जम्भेश्वर महाराज से जिज्ञासा प्रकट की कि गुरु महाराज कोई ऐसा उपाय बतलावें जिससे उसका उद्धार हो जावें, उसे पुन: इस सांसारिक जन्म-मरण के चक्कर में न आना पड़े। भक्त ताँतू की जिज्ञासा जानकर गुरु महाराज ने यह बैकुण्ठ धाम पहुँचाने वाला मन्त्र कहा: -

ॐ विष्णु-विष्णु तू भणरे प्राणी साधे भक्ति उधरणो।
दिवला सो दानो दास विदानों मदसुदानों महमाणों।
चेतो चित्त जाणी शार्ङ्ग पाणी नादे-वेदे निरंजणों।
आदि विष्णु वराह दाढ़ा कर धर अधरणों।
लक्ष्मी नारायण निश्चल थाणों थिर रहणों।
मोहन आप निरंजण स्वामी भण गोपालों त्रिभुवन तारो।
भणतां-गुणतां पाप क्षयो स्वर्ग-मोक्ष जेहिं तूठा लाभै।
अवचल राजो खाफर खानों क्षय करणों।
चीता दीठां मिरग तिरासै बाघां रोले गऊ विणासे
तिरपुले गुण-बाण हयो तप्त बुझै धरां जल बूठां -
यों विष्णु भणंतां पाप खयो। ज्यों भूख को पालण अन्न-अहारो
विष को पालण गरुड़ द्वारो के-के पंखेरू सींचाण तिरासै
यों विष्णु भणंतां पाप बिणासै। विष्णु ही मन विष्णु भणियों।
विष्णु ही मन विष्णु रहियो तेतीस कोटी बैकुण्ठ पहुन्ता
साचे सत् गुरु का मंत्र कहियो।।

हे प्राणी ! तुम बार-बार विष्णु-मन्त्र का जाप करते रहो। इस विष्णु मन्त्र का जाप करने से अनेकों साधु-भक्त जनों का उद्धार हुआ है। तुम विष्णु मंत्र का जाप करते हुए भी कभी अपने मन में अहंकार न लाकर एक दीपक की तरह त्याग भाव से अपनी तमाम लालसाओं का होम कर दो उन्हें त्याग दो। दीपक जैसे स्वयं जल कर अन्यों को प्रकाशित करता है इसी प्रकार दास्य भाव से दिया हुआ दान ही सुफलकारी है। क्योंकि जो कुछ भी है वह हमारा नहीं परम पिता परमेश्वर का है इस अवधारणा से दिया गया दान, दाता के मन में अहंकार पैदा नहीं करता। जो कोई अहंकारवश दान करता है वह उस दान की महिमा का सुख भोगता है उसका दान

यश प्राप्ति का एक साधन मात्र बन कर रह जाता है। अत: हे प्राणी! अत्यन्त सोच-समझ से आत्म चिन्तन करते हुए उस शार्ङ्ग-पाणी, विष्णु चेतना के स्तर पर जानने का प्रयास कर तथा यह जान कि यह नाद वेद (शब्द-ब्रह्म) सब उस एक निरंजन निराकार अलील ब्रह्म का ही साकार रूप है।

विष्णु भगवान् ने समय-समय पर अवतार धारण कर अपने भक्तों का उद्धार किया है। सर्वप्रथम आदिकाल में वराह के रूप में अवतार धारण कर अपनी दाढ़ रूपी हाथ से प्रलय कालीन अथाह जल में डूबी हुई इस धरती का उद्धार किया। वही लक्ष्मीपति, विष्णु प्राणी मात्र का एक मात्र आश्रय स्थल है। अत: हे प्राणी। तुम नित्य अनन्य भाव से उसी एक मात्र विष्णु पर आश्रित रहो।

यह आदि ब्रह्म निरंजन जो स्वयं माया-पति हो कर भी मोह-माया के बन्धन से मुक्त है वही एक मात्र सब का स्वामी है। हे प्राणी ! तूं उस आदि ब्रह्म भगवान् विष्णु का जाप कर, जो स्वयं तीन लोकों का भरण पोषण करने वाला और सब का रक्षक कहलाता है। जो प्राणी उस विष्णु के नाम का जाप करता है और निरन्तर सदाचार भाव सद्गुण ग्रहण करने में लगा रहता है उसके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं और वह विष्णु भगवान् की असीम कृपा से स्वर्ग एवं मोक्ष का लाभ प्राप्त करता है। उस परम विष्णु की सत्ता अडिग है। वह पाप एवं पापियों का नाश करने वाला है। उसका नाम लेने से पाप उसी प्रकार भयभीत होकर भाग जाते हैं जैसे चीते को देख कर हिरण आदि जंगली पशु भयभीत होकर कांपने एवं इधर-उधर भागने लगते हैं तथा जैसे सिंह की भयंकर गर्जना सुन कर गायें भय से मृत-प्राय: हो जाती है।

विष्णु भगवान् के नाम का जाप करने से प्राणी के समस्त पाप उसी प्रकार क्षीण हो कर नष्ट हो जाते हैं जैसे विष्णु द्वारा प्रदत्त बाण से भगवान् शंकर ने मयासुर द्वारा रचित तीनों पुरों को जला कर नष्ट कर दिया था एवं त्रिपुरारी की पदवी धारण की थी।

जिस प्रकार ग्रीष्म-ऋतु में तेज धूप से तप रही धरती की जलन केवल वर्षा का जल बरसने से ही शान्त होती है उसी प्रकार विष्णु का नाम जपने से प्राणी के समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। जैसे भूख अन्न से भागती है गरुड़ को देख कर सर्प भागते हैं, तथा जैसे अनेक-छोटे-छोटे पक्षी बाज को देखते ही भयपीड़ित हो कर कांपने या भागने लगते हैं उसी प्रकार विष्णु नाम का जाप करने से प्राणी के पाप भाग जाते हैं नष्ट हो जाते हैं।

अत: हे प्राणी ! नित्य मन ही मन विष्णु नाम का जाप करते रहो एवं अपने मन को निरन्तर विष्णु में ही लीन रखो। तेतीस करोड़ जीवों को बैकुण्ठ धाम पहुंचाने वाला पाप नाशक एवं सत्गुरु द्वारा उच्चरित यह विष्णु मन्त्र ही एक मात्र सच्चा मन्त्र है और इसी का जाप पल-पल करते रहना है।

निर्वाण

प्रसंग- सांस के प्रथम पोर से अन्तिम छोर तक यहाँ हर कार्य एक संस्कार के रूप में सम्पन्न होता है। पूर्ण आयु पाने के पश्चात् देह त्यागने वाले निर्वाण को भी यहां उत्सव के रूप में मनाते रहे हैं। सौ वर्ष की आयु पाने वाले की मृत्यु पर गीत गाये जाते हैं। 'हर का हिडोंला' जाने की प्रसन्नता गीतों में प्रकट की जाती है। अन्य बहुत सी परम्पराओं की तरह बिश्नोई समाज का मृतक संस्कार भी भिन्न है। जहां अन्य हिन्दुओं में बारह दिन तक पातक-शोक रहता है वहां बिश्नोइयों में केवल तीन दिन तक पातक रहता है। इसके पीछे धारणा यह है कि देह त्यागने के पश्चात् जीव को तीन दिन तक अपने परिवार एवं सगे सम्बंधियों के साथ रहने की छूट रहती है। इस अवधि के बाद वह अन्यान्य लोकों में प्रस्थान कर जाता है। इन तीन दिनों में कुछ विशेष प्रकार के क्रिया-कर्म सम्पन्न किये जाते हैं यथा -

(1) अन्तिम स्नान - सांस के अन्तिम छोर पर व्यक्ति को खाट या पलंग से नीचे उतार कर नंगी धरती पर सुलाया जाता है। इस समय उसे गुरु जम्भेश्वर द्वारा रचित कूंची वाला सबद सुनाया जाता है। जब सांस का चलना रूक जाता है हृदय की धड़कन बन्द हो जाती है नाड़ी की गति रूक जाती है शरीर अभी भी गर्म रहता है उस समय मृतक-देह को शुद्ध छने पानी में गंगाजल मिला कर अन्तिम स्नान करवाया जाता है।

(2) कफ़न (खाफण) देना - कफ़न देन के बाद बाजरी ज्वार या अन्य घास के तिनकों के गट्ठर से त्रण-शैया तैयार की जाती है। मृतक-देह को उस त्रण-शैया पर सुलाने के पश्चात् पुत्र एवं बन्धु-बांधव अपने कन्धों पर उठा कर श्मशान स्थल पर ले जाते हैं। कन्धा देने वाले सब नंगे पांव चलते हैं।

(4) दाग-देना (मिट्टी देना) - ज्यों ही किसी के प्राण देह त्यागते हैं उस समय यदि दिन का समय है तो कुछ परिजन उसके लिए श्मशान भूमि में 'घोर' खोदने चले जाते हैं। घोर - छ: फुट गहरा छ: फुट लम्बा तीन-चार फुट चौड़ा एक खड्डा खोद लेते हैं इसे ही घोर-खोदना कहा जाता है। मृतक के परिवार जन अपने कन्धों पर उठाकर लाई हुई देह को उस 'घोर' में ऋण-शैया सहित उत्तर दिशा की ओर सिर रख कर सुला देते हैं। तत्पश्चात् उसके पुत्र परिजन एवं बन्धु-बान्धव सब उस पर अपने हाथों से मिट्टी डाल-डाल कर उस घोर को भर देते हैं। गढ़ा भर जाने के बाद उस पर थोड़ा पानी बरसाया जाता है तब साथ गये लोग स्नान कर अपने घरों को लौट जाते हैं।

कागोल देना - मृतक के परिजन उसकी देह को भूमि में गाड़ने के पश्चात् जब घर लौट कर आते हैं तो उस विश्वास के साथ कि उसके प्राण अभी घर में उनके साथ मौजूद हैं उसे चूरमा या रोटी-दही मृतक के प्रिय-भोजन की कागोल कौवों को खिलाते हैं इसे कागोल-देना कहते हैं। मृतक के नाम दूसरे दिन भी इसी प्रकार घर पर कौवों को कगोल दी जाती है। तीसरे दिन मृतक के नाम जो मिष्टान्न मेहमानों को खिलाने हेतु बनाया जाता है जिसे औसर का धान कहा जाता है उसमें से सर्वप्रथम थोड़ा सा अंश निकाल कर उसके नाम से अग्नि को भेंट चढ़ाने के पश्चात् उसमें दही मिला कर श्मशान-स्थल पर जहाँ उसे मिट्टी दी गई है वहाँ ले जाकर उसे अन्तिम कागोल-चढ़ाते हैं। ऐसा लोगों का विश्वास है कि कौवे तो केवल माध्यम है जो अन्न के स्थूल भाग को खाते हैं उस अन्न का सूक्ष्म सार-तत्व उस मृतक प्राणी के प्राण ग्रहण करते हैं।

कागोल देने के बाद एक पानी का भरा हुआ घड़ा किसी खेजड़ी या हरे वृक्ष की जड़ में ऊनी वस्त्र पर अनाज के दाने डाल उसमें से छानते हुए बरसाया जाता है। पुत्र, प्रिय जन उस समय, उसे जलाञ्जली देते हैं। बस यही उस मृतक प्राणी से घर परिवार के लोगों की अन्तिम विदाई है। विश्वास है कि उस समय के बाद अपने जीवन में बिश्नोई-पन्थ पर चलने वाला जीव सीधा स्वर्ग धाम को चला जाता है।

कागोल एवं जलाञ्जली देने के पश्चात् परिजन घर लौट आते हैं। उसी समय सन्त-गायणाचार्य पाहल बना कर तैयार रखता है उस अभिमंत्रित जल को लोगों को तीन-तीन घूंट पिलाया जाता है पाहल को घर-भर में इधर-उधर छिड़क कर सारे घर का सूतक मिटा देते हैं।

उस अवसर पर पाहल बनाने एवं देने की विधि वही परम्परानुसार अपनाई जाती है जिसमें सन्त-गायणाचार्य द्वारा होम अग्निहोत्र कलश-स्थापना पाहल-मन्त्र पढ़कर पाहल करना गुरु वाणी के सबदों का सस्वर पाठ करना भजन साखी आरती गाना तथा अन्त में पाहल लेने के बाद प्रसाद स्वरूप मिष्टान्न का भोजन करना।

इस भान्ति तीसरे दिन विधिवत् शोक की बैठक व सूतक समाप्त हो जाता है। प्रायः सारे सगे-सम्बन्धी भी तीसरे दिन ही मिलने आते हैं। पाहल लेकर भोजन करने के पश्चात् सूतक समाप्ति के प्रतीक स्वरूप मृतक के परिवारजनों को नये वस्त्र भेंट देकर उनका सोग समाप्त करते हैं इस वस्त्र भेंट को उढ़ावणी करना कहा जाता है। पुरुषों को साफे वस्त्र तथा स्त्रियों को ओढ़णी उढ़ा कर सोग मिटाते हैं। बस यही निर्वाण सम्बन्धी अन्तिम संस्कार है। जन्म से मृत्यु पर्यन्त विभिन्न अवसरों पर सम्पन्न होने वाली संस्कार शृंखला की यह अन्तिम कड़ी है।

रात्रि-जागरण

प्रसंग- साथरियों, सार्वजनिक सत्संग स्थलों मन्दिरों पर तो रात्रि जागरण होते ही रहते है। परन्तु बिश्नोई-समाज में यह आम धारणा है कि हर बिश्नोई-गृहस्थ को वर्ष में कम से कम एक बार जम्भेश्वर का जागरण अवश्य आयोजित करना चाहिए।

जागरण वाले साधु गायणा सन्त-भक्त गृहस्थ कोई भी हो सकते हैं परन्तु इस जागरण की एक विशेष परम्परा रही है कि जागरण आयोजित करने वाला पहले सर्व जनों को आमंत्रित करता है। रात्रि को हवन का विधान न होने के कारण जागरण मण्डली सर्वप्रथम पांच आरती, गणेश, सरस्वती एवं शक्ति-भक्ति के आह्वान के पश्चात् जुमले की साखियाँ गाते हैं। यथा-सम्भव साखियों का भावार्थ एवं आशय श्रोताओं को समझाते हैं। बहुश्रुत होने के कारण श्रोता-वक्ता का भेद न रह कर प्रायः जागरण में शामिल सभी लोग साखी गायन में स्वयं भी साथ-साथ गाते रहते हैं।

जुमले की साखियों के पश्चात् अन्य साखियों एवं विभिन्न सन्तजनों द्वारा रचित भजन गाये जाते हैं। ज्ञान चर्चाएँ होती हैं। जागरण में सम्मिलित महिलायें भी कई बार साथ में तो कई बार पुरुषों से अलग साखी एवं भजन गाकर अपनी सक्रिय भागीदारी निभाती हैं। अर्द्धरात्रि के आस-पास आरती का थाल सजाया जाता है, जिसमें थाली या परात में बाजरी या गेहूं भर कर उसके बीच में आटे का बना चौमुखा दीपक गोघृत से भर कर, चारों बत्तियां जला कर सत्संग स्थल पर सभा के बीच रखा जाता है तत्पश्चात् 'कूं-कूं केरा चरण' 'धुन' 'जय जगदीश हरे' आदि विभिन्न आरतियां गाई जाती हैं। श्रोता गायक सभी को प्रसाद (बतासा) वितरित किया जाता है। श्रोता श्रद्धानुसार आरती के थाल में चढ़ावा चढ़ाते हैं जो जागरण करने वाले साधु या गायणों को मिलता है।

अर्द्धरात्रि के इस विराम के पश्चात् गांव या बस्ती के सामान्य लोग अपने-अपने घरों को चले जाते हैं क्योंकि उन्हें रात्रि विश्राम भी करना होता है ताकि दूसरे दिन अपने कृषि कार्य या सामान्य कार्य में कोई व्यवधान न पड़े। शेष जागरण आयोजित करने वाले परिवार के लोग तथा वृद्ध लोग जो दिन में कोई विशेष कार्य नहीं करते वे शेष रात्रि में जागरण में बैठे रहते हैं। साखी सबद-भजन आदि प्रातः काल तक गाये जाते रहते हैं। चार बजे के पश्चात् सब लोग अपनी नित्य क्रियाओं में लग जाते हैं। इस प्रकार जागरण के ये दो दौर सम्पन्न होने के पश्चात् सूर्य उदय

होने पर होम (यज्ञ) का आयोजन किया जता है। विधिपूर्वक होम प्रारम्भ होने के पश्चात् गुरु वाणी के 120 सबदों का सस्वर पाठ किया जाता है। कलश-स्थापना एवं पूजा के पश्चात् निर्धारित विधिपूर्वक पाहल किया जाता है। साखियाँ भजन आरती धुन आदि गाये जाते हैं और सब को पाहल पिला कर पूर्णाहुति देने के पश्चात् होम एवं जागरण की सम्पूर्ण प्रक्रिया सम्पन्न होती है। इस प्रकार वर्ष भर में एक जागरण-आयोजित कर तथा साधु-गायणों को भेंट-दक्षिणा देकर एक सद् बिश्नोई परिवार अपने गृहस्थ धर्म का पालन करता है। रात्रि जागरण का आयोजन बिश्नोई-ध र्म का एक महत्वपूर्ण आयाम है अत: इसके सुचारू रूप से संचालन की सुविधा हेतु जागरण में गाई जाने वाली जुमले की आठ साखियों एवं एक 'तारणहार' साखी को सरल अर्थ सहित इस कृति में संकलित किया जा रहा है। आरती एवं धुन को इस में मुद्रित करवाने के पीछे भी यही उद्देश्य है कि हर जागरण में कम से कम इस आवश्यक प्रक्रिया का तो अवश्य ही पालन किया जावे।

जुमले की साखियां

साखी 1 'आवो मिलो जुमले जुलो' - केशोजी

छप्पय -

नवण करूं गुरु जम्भ को निऊं निरमल भाव।
कर जोड़े बन्दू चरण सीस निवाय-निवाय।।
निवणी खिवणी वीनति सबसुं आदर भाव।
कह केशो सोई बड़ा जिहिं में घणा समाव।।
आम फलै नीचो निवैं एरंड ऊंचो जाय।
नुगुर-सुगुर की पारखा कह केशो समझाय।।

साखी -

आवो मिलो जुमले जुलो सिंवरो सिरजण हार।
सतगुरु सत पन्थ चलाविया खर तर खाण्डे धार।।

जम्भेश्वर जिभिया जपो भीतर छोड़ि विकार।
सम्पति सिरजणहार की विधि सूं सुणो विचार।।

अवसर ढील न कीजिए भले न लाभे वार।।
जम राजा वासे वह तलबी कियो तैयार।।

चहरी वस्तु न चाखिए उर पर तजि अहंकार।
बाड़े हूंता बीछड़या जाँरी सतगुरु करसी सार।।

सेरो सिंवरण प्राणियां अन्तर बड़े उदार।
पर निन्दा पापां सिरे भूल उठावै भार।।

परलै होयसी पाप सूं मूरख सहसी मार।
पाछै ही पछतावसी पापां तणी पहार।।

ओगुण गारो आदमी ईला रे उर भार।
कह केशो करणी करो पावो मोक्ष द्वार।।

गुरु जम्भेश्वर को नमस्कार करता हूं। शुद्ध एवं पवित्र भाव से गुरु के सन्मुख नतमस्तक हूँ। दोनों हाथ जोड़ कर उनके चरणों की बन्दना करता हूं। बारम्बार उनके सम्मुख अपना सिर झुकाता हूं। केशोजी कह रहे हैं कि इस संसार में वही बड़ा आदमी है जो अत्यन्त क्षमावान है, विनम्र है, अपनी गलतियों के लिए हमेशा क्षमा चाहने वाला तथा दूसरों को क्षमा करने वाला है एवं जिसके हृदय तथा मन में सब के प्रति आदर का भाव है।

गुरुहीन मूर्ख और गुरु-ज्ञान से युक्त सज्जन की पहचान बतलाते हुए केशोजी कह रहे हैं कि आम का वृक्ष फलों से युक्त होने पर नीचे झुकता है और इरंड का पेड़ या झाड़ फलने-फूलने पर और भी ज्यादा ऊँचा उठता है अर्थात् गुणवान ज्ञानी पुरुष ज्यों-ज्यों ज्ञान ग्रहण करता है अन्यों के सम्मुख त्यों-त्यों नम्रता से झुक कर चलता है जब कि गुरुहीन मूर्ख अकड़ कर चलता है।

हे भक्तजनों आवो ! सब मिलजुल कर एक साथ बैठो और इस संसार की रचना करने वाले परमात्मा का स्मरण करो। सतगुरु जम्भेश्वर भगवान् ने एक ऐसा सच्चाई का पंथ चलाया है जिस पर चलना तलवार की धार पर चलने के समान कठिन अवश्य है परन्तु एक मात्र यही मुक्ति का मार्ग है।

मन का मैल और हृदय का पाप छोड़ कर अपनी जिह्वा से निरन्तर गुरु जम्भेश्वर का नाम स्मरण करो जो स्वयं विष्णुरूप है। हमारी बात को ध्यान पूर्वक सुनो और उस पर विचार करो कि जिस धन-सम्पत्ति को अर्जित करने के लिए तुम रात-दिन लगे हो वह तुम्हारी नही है और न हो सकती है क्योंकि सब सम्पत्ति सृष्टिकर्त्ता की है। अत: सम्पत्ति को भी परमात्मा की मान कर उसका उपयोग करो संग्रह नहीं।

मनुष्य जन्म पाने का यह जो सुनहरा अवसर हमें मिला है इसमें कोई ढील-ढाल या असावधानी नहीं रखनी है ऐसा भला अवसर बार-बार मिलने का नहीं है। मृत्यु का देवता यमराज निरन्तर हमारे साथ लगा रहता है ज्यों-ज्यों जीवन की अवधि बीत रही है यमराज अपने दूत को तैयार कर रहा है। आती हुई एक-एक सांस और बीतता हुआ एक-एक क्षण मानो उस मृत्यु-दूत की चेतावनी है कि तुम्हें एक दिन यहां से जाना है तैयार रहना।

जो वस्तुएँ माल सामान तुम्हारा नहीं है दूसरों का है उनकी चाहना में अपना जीवन बरबाद मत करो। धनवान होने और धन के बल पर बड़ा आदमी होने का अहंकार अपने हृदय और मन से छोड़कर गुरु जम्भेश्वर की शरण में जाइये क्योंकि सतयुग में जो भी जीव भक्त प्रहलाद के पंथ में था उसके बाड़े में था और उस काल मुक्ति नहीं पा सका, गुरु जम्भेश्वर अपने वचनों के अनुसार उनकी सार-संभाल अवश्य लेंगे और उन्हें मोक्ष पद देंगे।

अत: हे प्राणी ! तुम शीघ्र तुरन्त भगवान् विष्णु का नाम स्मरण करना, उनका जाप करना प्रारम्भ करो।

उस परम पिता परमेश्वर का हृदय बड़ा उदार है। एक बार उसकी शरण में जाने भर की देर है वह बड़े-से-बड़े गुनाहों को माफ कर देने वाला है। हरिभजन करो। दूसरों की निन्दा मत करो। दूसरों के अवगुणों का बखान करना, उनकी निन्दा करना सबसे बड़ा पाप है। निन्दा करने वाला व्यर्थ में पापों का भागी बनता है। दूसरों के द्वारा किए गए पाप कृत्यों का बखान करने वाला निन्दक स्वयं उन पाप कृत्यों का दोषी बनता है दूसरों के पापों का बोझ वह खुद होता है।

जो कोई इस मनुष्य जीवन में आकर पाप करता है मरणोपरान्त वे पाप-दोष उसके साथ जायेंगे और उन पापों का फल उस जीव को कड़ी मार सहते हुए भोगना पड़ेगा। उस समय सिवाय पश्चाताप के उसका कोई वश नहीं चलेगा। जब वह अपने सामने अपने ही किये हुए पापों का पहाड़ देखेगा तो सिर धुन-धुन कर पछतायेगा परन्तु उस समय उसका कोई वश नहीं चलेगा।

केशोजी कह रहे हैं कि गुणहीन मनुष्य इस धरती के हृदय पर एक व्यर्थ का भार है। अत: हे विवेकवान लोगों ! अच्छे कर्म करते हुए पाप के बन्धनों से छूट कर मोक्ष का द्वार प्राप्त करो।

-::-

साखी 2

जीव के काजे-जुमले जाइये। - केशोजी

जीव के काजै जुमले जाइये कीजै गुरु फरमाइयै।
सुणिये ज्ञान कटै तन कसमल ज्ञान सरोवर न्हाइयै।।
श्रीपति सिंवरो सदा-सुख दाता जाय लीजै शरणाइये।
ऊदो भक्त हुवो अपरंपर जो जपतो मह माइयै।।
रावण सासै उरेहि आण्यां गोविन्द सा गुरु भाइयै।
लोहा-पांगल सुण कर सीधा सतगुरु हुआ सहाइयै।।
सिकन्दर यों कीवी करणी दुनिया फिरी दुहाइयै।
महमद्द खां नागोरी परच्यो चाल्यौ गुरु फुरमाइयै।।
सेख-सद्दू परचै पर आण्यां मरती गऊ छुड़ाइयै।
सिध साधु पेगंबर सीधा गिणियौ ज्ञान न जाइयै।।
रहो एकायन्त अन्तर खोजो भरम चुकावो भाइयै।
सुमिति आवै साधा संग बैठे कुमति न आवै काइयै।।

गह कर ज्ञान सुणो संग साधौ केशोजी साख सुणाइयै।

हे प्राणी! अपने जीव के कल्याण हेतु ज्ञान-सभा में जाओ साधु-भक्तजनों की सत्संग करो रात्रि जागरण में जाओ और गुरु जम्भेश्वर के बतलाये नियमों का पालन करते हुए अपना जीवन व्यतीत करो। सत्संग में जाने और ज्ञान की बातें सुनने से शरीर के पाप छूट जाते हैं। ज्ञान-रूपी तालाब में स्नान करने से शरीर का पाप-रूपी मैल धुल जाता है।

नित्य लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु का नाम स्मरण करो। विष्णु की शरण में जावो वे ही एकमात्र स्थायी सुख के देने वाले हैं।

ऊदा नाम का एक मनुष्य जो पहले माताजी का जाप करता था देवी-भक्त था वह बाद में गुरु जम्भेश्वर की शरण में आया और वह महान् भक्त कहलाया तथा अन्त में मोक्ष पद को प्राप्त हुआ। रावण और गोविन्द दोनों भाई गुरु शरण में आये दोनों गुरु जम्भेश्वर के शिष्य बने और अपने पाप कर्मों से छूट कर मुक्ति को प्राप्त हुए। लोहा-पांगल ने गुरु ज्ञान सुना, ग्रहण किया और वह उनकी शरण में आया जिससे गुरु जाम्भोजी ने उसे मुक्ति पद पाने में मदद की। इसी प्रकार सिकन्दर लोदी ने जाम्भोजी से ज्ञान प्राप्त किया उनके बतलाये रास्ते पर चला जिससे इस दुनियां में लोग उसकी दुहाई देते थे और अन्त में वह भी मुक्ति को प्राप्त हुआ।

नागौर का सूबेदार महमदखाँ गुरु जम्भेश्वर का शिष्य बना उनके बतलाये रास्ते पर चला और ज्ञान प्राप्त कर मुक्त हुआ। गुरु महाराज ने सेख-सदू को सत्य ज्ञान का परिचय दिया और वह जो नित्य गो-हत्या करता था उससे छुड़वाया। गो-हत्या बन्द हुई। सेख को सत्य का ज्ञान हुआ। वह जम्भेश्वर का शिष्य बना। इसी प्रकार अनेकों शिष्य साधु पैगम्बरों ने गुरु जम्भेश्वर से ज्ञान प्राप्त किया। किस-किस ने गुरु जम्भेश्वर से ज्ञान प्राप्त किया उनकी संख्या अपार है। ये तो चन्द उदाहरण मात्र हैं।

अत: हे भक्तजनों! एकान्तवास करो। अपने हृदय में स्थित परमात्मा को पहचानो, उन्हें ढूंढ़ो और इस सांसारिक माया जनित भ्रम को दूर करो। साधुजनों का साथ करने से उनके साथ सत्संग में बैठने से तुम्हारी बुद्धि निर्मल बनेगी सद्बुद्धि आयेगी और कुबुद्धि का नाश होगा। विवेकपूर्ण आचरण करना सीखोगे कोई बुद्धिहीन उल्टा व्यवहार नहीं करोगे। इस प्रकार केशोजी अपने ज्ञान की साक्षी देते हुए हमें बतला रहे हैं कि साधुजनों से ज्ञान की बातें सुनो सुन कर ग्रहण करो और उन पर आचरण करो तभी तुम्हारा जीवन सफल होगा।

-::-

साखी 3

साधे मोमणे कियो इलोच जुमलो रचावियो। - केशोजी

साधे मोमणे कियो इलोच जुमलो रचावियो।
इण जुमले ने पूजेला किरोड़ सु गुरु फरमावियो।।
मोमणों मेहलो मन की भ्रान्त कुफर चुकावियो।
मोमण मन का दुश्मणा पाले तो जुड़ जुमले जावियो।।
पाँचे क्रोड़े गुरु प्रहलाद मुखी कहावियो।
सात क्रोड़े हरिचन्द राव आछा कर्म कमावियो।।
नवें क्रोड़े युधिष्ठिर राव स्वर्ग सिधावियो।
क्रोड़े बारां रे काज जंभ कलु मं आवियो।।
सम्भराथल पे लियो छै मिलान ज्ञान सुनावियो।
शास्त्र-वेद विचार उत्तम पंथ चलावियो।।
कुपातर सूं अळगा टाळ सुपह बतावियो।
अमलांरा गाळ्या माण अनवीं नवांवियो।।
फेर्यो सावल ज्ञान अबूझ मिटावियो।
प्रहलादे सूं वाचा पाल जम्भ कलु में आवियो।।
जो ध्यावै गुरु जम्भदेव शीश निवावियो।
गुरु के सबद पिछाण केसव कवि गुण गावियो।।

मोक्ष की कामना करने वाले सन्त जनों ने आपस में विचार-विमर्श करने हेतु ज्ञान-सभा का आयोजन किया है। आपस में मिल बैठ कर सत्संग करने से करोड़ों लोगों का उद्धार हुआ है और आगे भी होगा ऐसा गुरु महाराज का आदेश है। जो मुमुक्षु हैं मोक्ष की कामना करने वाले हैं उन्हें अपने मन का भ्रम त्याग कर सच्चाई के मार्ग पर चलते हुए अपने पापों का क्षय करना चाहिए। परमात्मा ने हमें मानव जीवन देकर हमारे प्रति जो उपकार किया है उसका बदला हम सत्संग में जा कर हरिचर्चा करके तथा अपने पुण्य कर्मों द्वारा ही चुका सकते हैं। कवि कहता है कि हे मुमुक्षु! यदि तुम्हारे मन की कुवृत्तियाँ तुम्हें सत्संग में जाने से रोकती हैं तो तुम उनका सामना करो और एकाग्र भाव से और लोगों को भी साथ लेकर 'जागरण' में ज्ञान सभा में जाओ!

सत्संग का प्रभाव देखिये कि पाँच करोड़ जीव भक्त प्रहलाद के नेतृत्व में मुक्त हुए। सात करोड़ जीव राजा हरिचन्द्र के शुभ कर्मों के फलस्वरूप उनके नेतृत्व में मुक्त हुए। इसी प्रकार राजा युधिष्ठिर का साथ करने वाले नौ करोड़ प्राणी उनके साथ स्वर्ग पहुँचे। प्रहलाद पंथी विष्णु भक्त तैतीस करोड़ जीवों में से शेष रहे बाहर करोड़ जीवों का

उद्धार करने के लिए इस कलिकाल में गुरु जम्भेश्वर ने अवतारण धारण किया।

गुरु जम्भेश्वर ने संभराथल धोरे पर जुमला रचाया, ज्ञान सभा आयोजित की और अपने पास आने वालों को सत्यज्ञान का उपदेश दिया। गुरु महाराज ने वेद-शास्त्र सम्मत जीवन पद्धति युक्त यह उत्तम बिश्नोई-पंथ चलाया और दुष्ट-पापी जनों से अलग करके उन्हें धर्म और सच्चाई का मार्ग बतलाया।

गुरु जम्भेश्वर ने पापी मलेच्छों के अहंकार को नष्ट किया और घमंडियों का घमंड चूर करके उन्हें अपने सम्मुख नत-मस्तक किया। चारों तरफ सत्य-ज्ञान का प्रचार किया और लोगों का भ्रम निवारण कर उन्हें सच्चाई का मार्ग दिखलाया। इस प्रकार अपने भक्त प्रहलाद को दिये वचन के पालनार्थ गुरु जम्भेश्वर भगवान् कलयुग में अवतरित हुए।

जो कोई भी गुरु जम्भेश्वर का ध्यान करता है उनके बताये मार्ग पर चलता है वह इस जीवन को नम्रतापूर्वक जीता हुआ अन्त में मोक्ष पद प्राप्त करता है। केशोजी कह रहे हैं कि उन्होंने गुरुवाणी के सबदों की महिमा जान कर ही इस गुरु ज्ञानमयी साखी की रचना की है।

-::-

साखी 4

'जुमले आवो गुरु-भाइयो-सुपह करो ज काम' -केशोजी

जुमले आवो गुरु भाइयो सुपह करो ज काम।
ज्ञान सरोवर सांभलो सबद सुणो चित लाय।।
गुरु फरमाई सो करो कुपह करोज कांय?
दान दया जरणा जुगत सत-व्रत शील दृढ़ाय।।
आठ धर्म नवधा भगति सन्ध्या सु सबद सुभाय।
आचारे ब्रह्मा सही ओ३म् से ध्यान लगाय।।
आन तजो ओ३म भजो पाप रसातल जाय।
जिण यो शरीर सिरजियो सो सत-गुरु सुरराय।।
जुग-जुग जीवे जगत में अवगति अकल ज थाय।
माता-पिता जाके नहीं पख परवार नसाय।।
ज्योति स्वरूपी जगत में सर्वमय रह्यो समाय।
अटल इडक एक ज्योति है ना कोई आवे जाय।।
ओ३म् विष्णु केसो जपे फिर आवागवण न आय।

---00---

कवि केशोजी कह रहे हैं कि उनके गुरुभाई समस्त बिश्नोइयों को चाहिए कि वे जहाँ भी सत्संग हो, जमा-जागरण हो वहाँ मिल-जुल कर आवें ज्ञान चर्चा में भाग लें तथा हमेशा शुभ कर्म करें। 'जम्मा' ज्ञान का सागर है। रात्रि जागरण में जा कर ज्ञान प्राप्त करो तथा गुरु-वाणी के सबदों को अपने लिए कल्याणकारी जानकर अति प्रेम भाव से सुनो।

गुरु जम्भेश्वर भगवान् ने उनतीस नियमों के रूप में जो कुछ करने का आदेश दिया है वे ही कार्य करो। अज्ञान में पड़ कर बुराई के रास्ते पर क्यों चलते हो? सुपात्र को दान दो दुखियों पर दया करो अन्यों के कटु व्यवहार और वचनों के प्रति अपने हृदय में क्षमा का भाव रखो उन्हें अज्ञानी जान कर माफ कर दो। अपने जीवन को संयम एवं युक्तिपूर्वक बिताओ। सच्चाई और शील व्रत का दृढ़ता से पालन करो।

आठ प्रकार के धर्मों (कर्त्तव्यों) का पालन करो नौ प्रकार की भक्ति (श्रवण कीर्तन स्मरण पाद सेवन अर्चन वंदन दास्य सख्य और आत्म निवेदन) के मार्ग पर चलो। प्रात: सायं स्वभाव वश आरती-वन्दना करो।

समस्त संसार को ब्रह्ममय जान कर अन्यों के प्रति आचरण करो कि सब कुछ ब्रह्म ही है। अन्य कोई नहीं है। अपना ध्यान ॐ जो सर्वव्यापी ब्रह्म का रूप है उस पर केन्द्रित रखो। बार-बार इसी रूप का ध्यान करो। यही ध्वनि उच्चरित करो।

अन्य नामों को त्याग कर केवल एक ॐ शब्द का ही बार-बार उच्चारण ध्यान मनन करो ताकि तुम्हारे समस्त पाप नष्ट हो जाये। ॐ शब्द का जाप करने से तुम पापों से ऊपर उठकर मुक्तावस्था को प्राप्त कर लोगे। जिस परमात्मा ने इस शरीर की रचना की है वही तुम्हारा सच्चा गुरु है वही देवों का देव है।

परमात्मा कालातीत है। वह युगों-युगों से इस समस्त संसार में व्याप्त है। यह काल और संसार उसी से है वह इनसे नहीं है। उनकी महिमा अपार है। हमारी बुद्धि और ज्ञान उसकी थाह नहीं ले सकते। वह ज्ञानातीत है।

उसके न कोई माता-पिता है न कोई परिवार एवं जाति समाज है। वह तो ज्योति स्वरूप बन कर इस समस्त जगत में परिव्याप्त है। वह सब में है कण-कण में व्याप्त है वही सब कुछ है उससे परे कुछ भी नहीं है।

परमात्मा एक ऐसी ज्योति है जो अटल स्थिर और शाश्वत है। वह एक ऐसा प्रकाश है जो न कहीं से आता है न ही कहीं जाता है। इस प्रकार केशोजी कह रहे हैं जो प्राणी निरन्तर ओ३म् विष्णु का जाप करता है वह मरणोपरान्त पुन: इस जन्म-मरण के चक्कर में नहीं आता। हमेशा-हमेशा के लिए मुक्त हो जाता है।

-::-

साखी 5

'आवो मिलो साधो मोमणो-रल-मिल जुमलो होय' - केशोजी

आवो मिलो साधो मोमणों रल-मिल जुमलो होय।
आशा तृष्णा पापणी ये तजिये कारण जोय।।
ओगुणगारो आदमी गुण कूं लखे न कोय।
अजर जरे भवसागर तरे पापी परलय होय।।
इमृत बाणी बोलिये दोष न लागे कोय।
काम क्रोध को मैल जो ज्ञान नीर से धोय।।
चंचल चित्त को थिर करो स्वर्ग-वास ह्वे तोय।
ढूंढ़े सांसा पलक में फिर गत कैसे होय।।
तपे तो ऋषियां शरण जा तेरी भ्रम गांठ दे खोल।
पर निन्दा मूरख करै जिन गुरु न चीन्हो कोय।।
भवसागर तिरना कठिन मेर तजे नहीं कोय।
सांसो सांस सिंवरण करो कवि कैसो कहे तोय।।

हे मोक्ष की कामना करने वाले सन्तजनो! आवो मिल बैठ कर सत्संग करो। आपस में हिल-मिलकर बैठने से ज्ञान चर्चा करने से ही सत्संग का समा बंधेगा। इन्द्रिय सुखों के भोगने की लालसा निरन्तर और अधिक पाने की इच्छाएँ ये सब पाप की मूल हैं। इन नश्वर कामनाओं और झूठी इच्छाओं को अपने विवेक की कसौटी पर परखिये तथा मिथ्या जानकर इनका त्याग कीजिए।

गुणहीन व्यक्ति गुणों के महत्व को नहीं पहचान सकता। जो कोई भी काम क्रोध ईर्ष्या मद और मोह इन अजरणीय प्रवृत्तियों को अपने संयम के बल पर वश में कर लेता है इन पर अपना नियंत्रण रखता है वह इस संसार सागर से पार उतर जाता है फिर इस संसार चक्र में नहीं आता परन्तु जो इनके वश में हैं वह पापों का भागीदार बनता है और अन्त में अपने मानव जीवन को व्यर्थ गंवाकर मर जाता है तथा पुन: जन्म धारण करता है।

कवि कहता है कि अमृत के समान मधुर वाणी बोलनी चाहिए। मधुर शब्द उच्चारण करने वाले को वाणी का दोष नहीं लगता। काम क्रोध आदि वृत्तियों के अवगुण रूपी मैल को ज्ञान रूपी जल से धोना चाहिए अर्थात् ज्ञान के बल पर ही काम-क्रोध को वश में किया जा सकता है।

जो साधक ज्ञान और संयम द्वारा अपने अति चंचल मन को एकाग्र कर स्थिर बना लेगा वह अन्त में स्वर्ग को प्राप्त करेगा और जन्म-मरण से छूट जायेगा। परन्तु जो साधक परम सत्य को केवल सांसा चढ़ाने में या पलक बन्द करने में पाना

चाहता है वह मुक्ति या मोक्ष नहीं पा सकता। कवि कहता है कि हे साधक! यदि वास्तव में सच्चे मन से तपस्या करना चाहता है तो किन्हीं ऋषि-मुनि की शरण में जा उन्हें अपना गुरु बना। वे तुम्हारे भ्रम और अज्ञान की गांठ खोलकर तुम्हें ज्ञान तथा अनुभव युक्त बना देंगे।

जो दूसरों की निन्दा करता है वह अज्ञानी तथा मूर्ख है। जिसने सद्गुरु को नहीं पहचाना वह अज्ञानता से भ्रम से मुक्ति नहीं पा सकता। जब तक कोई अपने अहं भाव को नहीं त्याग देता वह इस संसार-सागर से पार नहीं जा सकता जन्म-मरण के चक्कर से छूट नहीं सकता अर्थात् जब तक किसी के मन में यह पृथकता का बोध है कि 'यह मैं हूँ यह मेरा है।' वह दुई को त्याग कर ईश्वरमय नहीं बन सकता। 'जब मैं है तब हरि नहीं अब हरि है मैं नाहीं।'

कवि केशवदास जी कह रहे हैं कि प्रत्येक सांस के साथ भगवान् विष्णु का स्मरण करो। सांस-सांस के साथ लिया गया नाम तुम्हें इस भवसागर से पार पहुँचा देगा। अत: निरन्तर हरि स्मरण करो! एक मात्र विष्णु का नाम स्मरण ही मुक्तिदाता है।

-::-

साखी 6

'जागो मोमणों ना सोवो ना करो नींद पियार' - ऊदोजी नेण

जागो मोमणों ना सोवो ना करो नींद पियार।
जैसा सुपना रैण का ऐसो 'ओ' संसार।।
कई सुभागी आम्बो रोपियो भगवत् के दरबार।
पींघ पड़ेगी आम्बे सोवणी हींडै कै शुचियार।।
एकणि डाली हूँ चढ़ी दूजे मोमण बीर।
जिण तो डाले हूँ चढ़ी तिण घणेरी भीड़।।
हाथांरो मूंदड़ो गिर पड़्यो काना री नव रंग बीण।
काज पराया ना सरै जांह दूखे तांह पीड़।।
एकण डांडी जुग गयो राजा रंक फकीर।
एक सिंघासण चढ़ि चल्या एक जाय बन्ध्या जंजीर।।
दुर्लभ देसे गरजियो बूठो घटि-घटि मांहि।
बाहर था ते ऊबरच्या भीगा मन्दरिये माहिं।।
छान पुराणी छज नूंवो चुंय-चुंय पड़े मजीठ।
लाखों इण पर चेतिया जाय'र' बस्या बैकुंठ।।
नाम दरावो देवजी जांसे उतरो पार।
ऊदोजी बोले बीणती म्हारी आवागवण निवार।।

हे मोमिन! सच्चाई की राह पर चलने वाले लोगों! जागो। अज्ञान की नींद में मत सोवो। नींद और अज्ञान दोनों समान हैं दोनों ही भ्रम की चादर है। नींद से हेत मत करो। जैसा रात्रि के समय नींद में दिखाई पड़ने वाला स्वप्न मिथ्या है वैसा ही यह दिखाई पड़ने वाला संसार भी मिथ्या है। न स्वप्न सत्य है और न यह जागृति सत्य है दोनों समान हैं यह केवल माया की छाया है।

सत्संग आयोजित करना बड़े भाग्य का काम है। किसी भाग्यवान ने यदि ज्ञान सभा बुलाई है जमा-रचा है तो यह भगवान् के दरबार में आम का पेड़ लगाने के समान है। जागरण वह आम का वृक्ष है जिसके ज्ञान रूपी मधुर फल लगते हैं। इस जागरण रूपी आम के वृक्ष की शाखा पर ज्ञान-चर्चा का झुला लगा हुआ है जो सज्जन हैं जिनका मन निर्मल है वे लोग इस ज्ञान के झूले पर चढ़ कर झूलेंगे।

इस ज्ञान-सभा रूपी आम की एक टहनी पर तो अहम् भावना रूपी बहिन चढ़ी हुई है और दूसरी टहनी पर ममता का भाई मुमुक्षु चढ़ा हुआ है। एक तरफ अहंकर रूपी नारी बैठी है वहाँ बहुत भीड़ है और भी कई लोग उसी मोह रूपी टहनी पर चढ़े हुए हैं। ऐसी भीड़ भाड़ में देह रूपी नारी के हाथ की अंगूठी और कानों में पहनी नव रंगी-बीण-झुमकी-झूमर गिर पड़ी अर्थात् माया की चकाचौंध में प्राणी हाथों से शुभ काम करना और कानों से हरि भजन सुनना भूल गया। उसके हाथों की शोभा पुण्य कर्म रूपी अंगूठी और कानों की शोभा हरि-गुण-श्रवण रूपी झूमर दोनों कहीं दुनियांदारी की धकमपैल में खो गये हैं।

भक्ति और मुक्ति के मामले में और कोई हमारी मदद नहीं कर सकता जैसे जिसके जहाँ चोट लगी है वहीं पीड़ा है उस पीड़ा के दर्द की अनुभूति केवल वहीं कर सकता जो उसे भोग रहा है दूसरे केवल सहानुभूति दिखला सकते हैं परन्तु दर्द तो उसी को सहन करना पड़ेगा। इसी भान्ति पाप कर्म करने वाले को पापों का और पुण्य करने वाले को पुण्य का फल स्वयं ही भोगना पड़ेगा।

यह संसार नाशवान है। यहाँ जो आया है उसे जाना है। राजा, भिखारी और फकीर सब एक ही मौत के मार्ग पर जाते हैं। जिसने मानव देह पाकर पुण्य कर्म कमाये हैं वह तो विमान पर चढ़ कर स्वर्गारोहण करता है और जिसने पाप कृत्य किये हैं यह यमदूतों द्वारा लोह शृंखलाओं में बन्ध कर नरक को जाता है।

जब ब्रह्म-रन्ध्र में अनहद-नाद की गर्जना सुनाई पड़ती है तब अमृत की वर्षा होने लगती है। साधक आत्मलीन होकर उस सहस्रार से टपकने वाली अमृत बूंदों को अपने अन्दर ही अन्दर पान करता रहता है। जो बहिर्मुखी थे जिनका ध्यान दुनियादारी में था वे उस अमृत-वर्षा से वंचित रहे और जिनका मन ब्रह्म में लीन था वे अपने मन मन्दिर में उस अमृत-वर्षा से भीग कर निहाल हो गये।

परमात्मा से बिछुड़ी यह आत्मा रूपी छपरी बहुत पुरानी है यह देह रूपी

छाजन नया है अर्थात् इस आत्मा रूपी झोंपड़ी ने कई देह रूपी छाजन धारण किये हैं। इस देह रूपी नये छाजन में से मोह-ममता की रंगीन बूंदें टपक रही हैं। (छप्पर में से पड़ने वाले टपुकड़े लाल-मैले-काले-मजीठ रंग के ही होते हैं) कवि कहता है कि देह की इस नश्वरता को देख कर लाखों लोग सचेत हो गये उन्हें ज्ञान हो गया कि यह शरीर नाशवान है अत: उन्होंने पुण्य कर्म किये भगवान् की भक्ति की और अपने शुभ कर्मों के बल पर बैकुण्ठ धाम में जाकर बस गये।

अत: बार-बार भगवान् विष्णु का नाम लो मनुष्य का नाम भी परमात्मा के नाम पर ही निकालो ताकि उस बहाने भी बार-बार भगवान् का ही नाम मुख से आता रहे। इस कलयुग में केवल भगवान् का नाम लेने से ही संसार सागर से पार उतर जावोगे। इस प्रकार भक्त-कवि ऊदोजी प्रार्थना कर रहे हैं कि हे भगवान्! हमें जन्म-मरण के चक्कर से छुटकारा दिलावो। यह बार-बार का आना-जाना अब नहीं होता इससे मुक्ति दो।

-::-

साखी 7

'जुमलै-जुमलै जाइये-जो दिल जुमलै होय' - ऊदोजी नेण

जुमलै-जुलकर जाइये, जो दिल जुमलै होय।
ज्ञान सरोवर न्हाइये, दिल का कषमल खोय।।
जुमलै सोहे साल्हिया, काबरिया जुमलै कांय।
काबरिया जुमलै आविया, लेसी वाद-विवाद।।
जो कोई बोलै श्याम सूं, सुनहां ज्यूं गुर्राय।
फीडा घाते गाफल पायचा, ठल-हल पांव धराय।।
खांगी बांधै गाफल पागड़ी, निरखत चालै छाँह।
घात कुसट में गेडियो, करड़ी नजर झुकाय।।
कांयरै गाफल पांतरयो, सबद गुरु का मान।
गुरु का सबद न मानहीं, अतरा 'दौरे' जाय।।
निंव चालो खिंव बोलणा, एकण मरण मराय।
देवजी तेरे नाम नै, सुमिरन करूं बारम्बार।।
पहिले हिन्दू सिरजिया, पीछै मुसलमान।
मुसलमान-हिन्दुवां, रोजी दे करतार।।
नाहर, सिंह, नर, देवता, ढोयौ स्वर्ग मिलाण।
जिंहिं चढ़ि मोमण लांधिया, भवजल सौं परवाण।।

मरो न, जरो न, तेजरो, चूकौ आवागवण।
मोमण स्वर्गे नावड़्या, कर पूरो परवाण।।
जर जँवरो जोखो नहीं, पीसण नै गंजै कोय।
ऊदौजी बोले वीणती, म्हारी आवागवण निवार।।

हे भक्तजनो! यदि तुम्हारा दिल परमात्मा में लीन होना चाहता है भगवान् से जुड़ना चाहता है तो तुम बार-बार ज्ञान-सभा (जम्मा) में जावो। सत्संग में जा कर ज्ञान-रूपी तालाब में दिल के पाप रूपी मैल को धोकर इसे पवित्र एवं शुद्ध बनाओ।

जिन लोगों ने सत्य को जान लिया, जो विनम्र हैं वे ही ज्ञान-सभा में शोभा पाते हैं। जो संशय एवं भ्रम में पड़े हुए हैं ऐसे श्रद्धाहीन लोगों का सत्संग में जाना व्यर्थ है। अधकचरे भ्रम में पड़े हुए लोग यदि जागरण में आयेंगे तो वे व्यर्थ के वाद-विवाद में उलझ कर अपना समय तो बर्बाद करेंगे ही अन्य लोगों के लिए भी बाधक बनेंगे। यदि ऐसे संदेह ग्रस्त लोगों के सम्मुख कोई ज्ञान तथा श्रद्धा-भक्ति की बात कहेगा तो वे उसके सम्मुख ऐसे क्रोध में भर कर गुर्रायेंगे जैसे अन्य बस्ती के किसी कुत्ते के सम्मुख कोई कुत्ता गुर्राता है।

कवि कहता है कि माया के भ्रम में पड़े हुए लोग बड़े अहंकार में भरकर बिना खुरे की जूतियाँ (सैन्डिल) पहनते हैं और घमण्ड से नाप-तोल कर पांव रखते हुए अपनी ही चाल पर मोहित होते हैं। ऐसे भ्रमित लोग अपने सिर पर टेढ़ी तुर्रेदार पगड़ी बांधते हैं और अपनी छाया को देखते हुए चलते हैं। ऐसे घमण्ड और अहांकर में भरे हुए लोगों की पहचान है कि वे बगल में खुण्डा (लकड़ी या धातु की आगे से मुड़ी हुई छड़ी) डाल कर चलते हैं और दूसरों पर अपनी टेढ़ी-कठोर दृष्टि डालते हैं कि जैसे वे उनके रौब को मान रहे हैं या नहीं। ऊदोजी कह रहे हैं कि हे भ्रम में पड़े हुए लोगों! तुम कहाँ भटक गये! कहां अज्ञानवश माया के जाल में फंस गये यदि अपना कल्याण चाहते हो तो गुरु जम्भेश्वर के कहे हुए सबदों को मान कर तदनुकूल आचरण करो। इसीसे तुम्हारा भला है। जो लोग गुरु-वाणी के सबदों को नहीं मानेंगे वे सब नरक में जायेंगे।

अत: हे लोगों! संसार के दूसरों के सम्मुख नम्रता का व्यवहार करो। मधुर वाणी बोलो दूसरों के प्रति नित्य क्षमा का भाव रखो। यह जगत् नाशवान है यहाँ सब को मरना है। क्या बड़ा क्या छोटा सब को एक ही मौत के मार्ग जाना है। कवि कहता है कि हे परब्रह्म परमात्मा! तुम्हीं सब कुछ देने वाले हो मैं बारम्बार तुम्हारा स्मरण करता हूँ।

जन्म से मनुष्य मात्र एक समान है। जब शिशु का जन्म होता है तो वह प्रथम दृष्टि हिन्दू ही होता है बाद में संस्कारों द्वारा उसे मुसलमान बनाया जाता है।

अर्थात् परमात्मा हिन्दू और मुसलमान को पृथक्-पृथक् नहीं बनाता। ये जाति-धर्म-गत भेद तो जगत् जन्य मनुष्य निर्मित है। चाहे कोई मुसलमान हो या हिन्दू सब को रोटी-रोजी परमात्मा देता है। सब परमात्मा के पुत्र हैं उसी के द्वारा पालित पोषित होते हैं। वन्य पशु, सिंह, मनुष्य, देवता ये सब सृष्टि कर्त्ता के द्वारा सृजित हैं और इनकी यह भिन्नता इस देह तक ही सीमित है स्वर्ग के दरबार में सब जीव समान हैं वहाँ आत्मा के स्तर पर सब का परमात्मा से सीधा सम्बन्ध है। इस बात के अनेकों प्रमाण हैं कि मोक्ष की कामना करने वाले भक्ति की नाव पर चढ़ कर इस संसार सागर से हमेशा पार होते हैं। इस जन्म-मरण के चक्कर से छूटने के पश्चात् न वहाँ मृत्यु है न बुढ़ापा न कोई ताप दुख है आत्मा बार-बार इस संसार में आने-जाने के चक्कर से मुक्त हो जाती है। जिनके मन में स्वर्ग की कामना है जो मुमुक्षु हैं वे अपनी इच्छा भक्ति और शुभ कर्मों के बल पर हमेशा से स्वर्ग में पहुँचते रहे हैं इसके अनेकों प्रमाण हैं।

स्वर्ग में पहुँचने के पश्चात् न वहाँ बुढ़ा होने का खतरा है न यमदूतों का भय है न वहां शोषण एवं पीड़ाएँ हैं न वहाँ कोई दण्डित करने वाला है। स्वर्ग का राज्य पूर्णत: कष्ट एवं भय से मुक्त है। अत: भक्त-कवि ऊदोजी प्रार्थना कर रहे हैं कि हे परमात्मा! हमें जन्म-मरण के चक्कर से छुड़ा कर मुक्ति प्रदान करो।

-::-

साखी 8

'आवो मिलो साधो मोमणों-रल-मिल जमो रचाय' - आलमजी

छप्पइया (1) खींयों भींयों दुरजनों संहसो अरु रणधीर।
पूरी दिखाई सोनवी सेवक पंच शरीर।।
बाबल मन लालच हुयो सिलम लिवि उठाय।
ज्यों काटे त्यों दुणी हुवे इसमें संसय नांय।।
पर उपकारी जीव हुए मन्दिर दिया बणाय।
कह आलम कोई सांभले सदेह सुरगां जाय।।

साखी (2)

आवो मिलो साधो मोमणों रल-मिल जमो रचाय।
साच सिद्धक मिल जोइयो विष्णु-विष्णु भणांय।।
विष्णु जम्प्यां सुख सांवजे जम गजण ते छुड़ाय।
जोई बायो सोई लूणयों बिन बायां पछताय।।
लुणों-चुणों साधों मोमणों सम्भल गांठ की जाय।
काज सम्भले बेड़े चढ़े भुंय-जल ज्यूं लंघाय।।

भुंय-जल लंघे से ऊबरे पहुँचे पार गिराय।
पार गिराय सुख भोगवे हरि दीदार मिलाय।।
फूलो हलवी पाठो कूचवी बीजल इधक खिंवाय।
तासे तिन जे पीवही जीवत जे मर जाय।।
जीवत मरे सो ऊबरे पहुँचे पार गिराय।
रतन-काया साँचे ढली जो ये आपा पहराय।।
रतन कायापण पहर के हिंडोले बेसाय।
हिंडोलेपण बैस के सहज ही सूरत लगाय।।
छल्या कचोला इमरत का सु गुरु परसाद पिवाय।
अति प्रेम से ओम् जपो भृकुटी सुरत लगाय।।
जंभेश्वर को सेवक बोले आलमो।
इण विधि जमो रचाय।।

(1) गुरु जम्भेश्वर ने खींयां, भींया, दुरजन, संहसो और रणधीर इन पाँचों भक्तों को शरीर सहित अपने साथ ले जाकर सोनवी नगरी दिखलाई। वहाँ स्वर्ण ही स्वर्ण देख कर रणधीर बाबल के मन में लोभ उत्पन्न हुआ और उन्होंने एक रथ की सिलम (बैल या घोड़ा जोड़ने में जूवे के सिरे पर लगी वह कील जिससे बैल या घोड़े का गला बंधा रहता है) चुपचाप उठा कर अपने साथ रख ली। जब वापिस संभराथल पर आये तब उन्होंने वह स्वर्ण सिलम गुरु जम्भेश्वर को बतलाई। गुरु महाराज ने कहा कि यह तो अच्छा नहीं हुआ परन्तु इसका उपयोग परोपकार में करने से कुछ-कुछ प्रायश्चित होगा। उस सोने की सिलम में खास गुण था कि उसे जितनी काटे वह उतनी ही बढ़ जाती थी। काटने पर बढ़ने की बात में कोई सन्देह नहीं है क्योंकि इसके पीछे गुरु महाराज का वरदान था।

रणधीरजी ने अपना सारा जीवन दूसरों की भलाई में लगाया। उन्होंने उसी सिलम के सोने को काट-काट कर मुकाम के मन्दिर का निर्माण करवाया। कवि आलम का कहना है कि जो कोई जीव अभी भी संभल जायेगा गुरु शक्ति में विश्वास कर उनकी शरण में जायेगा वह और तो क्या इस देह सहित भी स्वर्ग में जा सकता है। गुरु कृपा से क्या नहीं हो सकता! जैसे रणधीर आदि को गुरु महाराज ने सदेह स्वर्ण नगरी की यात्रा करवाई।

(2) हे सज्जनो! मोक्ष की कामना करने वाले अब सन्तजन आवो! मिल बैठ कर जमा रचाओ। ज्ञान सभा आयोजित करो। सत्य की राह पर चलने वालों, अपने जीवन का लक्ष्य सिद्ध करने के इच्छुक भक्तजनों! निरन्तर 'विष्णु' 'विष्णु' नाम का जाप करो।

विष्णु मन्त्र का जाप करने से इस जीवन में सुख की वृद्धि होगी और यम के निरंकुश

डंडे से, उसके शासन से छूट जावोगे। यह विष्णु मन्त्र इस जीवन में सुख देता है और मरणोपरान्त यम के दूतों से छुड़ा कर, बैकुण्ठ धाम पहुँचा देता है। जिसने इस जन्म में विष्णु नाम जप रूपी भक्ति का बीज बोया, वही मोक्ष रूप फल प्राप्त करेगा और जो यह भक्ति रूपी बीज नहीं बोयेगा उसे अन्त में पश्चाताप करना पड़ेगा। अतः हे मोक्ष की कामना करने वाले संत जनो! विष्णु नाम जप रूपी खेती करो और मोक्ष-रूपी फल प्राप्त करो। कहीं ऐसा न हो कि पूर्व जन्म के जिन पुण्य कर्मों के फल से यह मानव शरीर मिला है, उन पूर्व अर्जित शुभ कर्मों की गठरी को भी अपने दुष्कर्मों से गंवा बैठे। जिसने भी अपने जीवन लक्ष्य को पहचाना, विष्णु नाम जप रूपी नाव पर चढ़, वह इस माया-मोह रूपी संसार सागर से पार हो गया। जो इस संसार सागर से पार उतर जाता है वही जन्म-मरण के चक्कर से छूट सकता है। इस दुःखमय संसार से मुक्त होकर, भगवान् के दरबार में पहुँचने वाला वहाँ परमात्मा के दर्शन करता है और निरन्तर सुखों का भोग करता हुआ ईश्वर मय बन जाता है।

साधक अपनी प्राण-वायु को नियंत्रित कर मूलाधार स्वाधिष्ठान मणीपुर हृदय अनाहत विशुद्ध चक्रों को पार करता हुआ सुषम्ना द्वार से जब आज्ञा चक्र में पहुंचता है तब वहां से सहस्रार-दल कमल में परम ज्योति के दर्शन कर इतना आनन्दित होता है जैसे मानो श्याम-बादल की घटाओं में बिजली चमकती देख वह किसान प्रसन्न होता है जिसके खेत में बोये बीजों के कोमल अंकुर फूट आये हों और वह उन्हें देख-देख कर फूला नहीं समा रहा हो।

आज्ञा चक्र में पहुंचने के पश्चात् सत्-रज-तम ये तीनों गुण शान्त होकर सम की स्थिति में पहुंच जाते हैं और उस स्थिति में वही साधक जीवित एवं चेतन रहता है जिसने अपने अहम् को मार कर एकात्म भाव को पा लिया है। जिसने पृथकता के अहंकार को मार दिया है वही वास्तव में अपने आत्म-स्वरूप की रक्षा कर पाता है और मरणोपरान्त इस संसार से पार पहुंच सकता है।

जिसने अपने शुद्ध-चेतन आत्म भाव को पहचान लिया वही उस रतन-काया सूक्ष्म स्वरूप को पा सकेगा। जिसने इस आत्म-रूप का अनुभव कर लिया वह इस देह में रहते हुए भी सुख का झूला झूलता रहता है। ऐसी आनन्दमयी स्थिति में उसका ध्यान सहज रूप से परमात्मा में लगा रहता है। परमात्मा के साथ का वह आलौकिक सुख ऐसा है मानो अमृत भरा हुआ कटोरा कोई प्यासा पी रहा हो। परन्तु वह परमात्म दर्शन रूपी अमृत का कटोरा वही शिष्य पा सकता है जिस पर गुरु की कृपा हो। गुरु कृपा से ही ईश्वर के दर्शन सम्भव है।

गुरु जम्भेश्वर का सेवक-शिष्य कवि आलम कहता है कि अपने ध्यान को भृकुटी-अर्थात् ज्ञान चक्र में लगाकर अति प्रेम भाव से 'ॐ' मन्त्र का जाप करो तथा इस प्रकार रात्रि-जागरण में ज्ञान सभा का आयोजन करो।

-::-

साखी 9

'तारण-हार थलासिर आयो'

तारण-हार थलासिर आयो जे कोई तरै सो तरियो जीव नै।
जे जिवड़ा को भलपण चाहो सेवा विष्णु जी की करियो जीव नै।
मिनखा-देही पड़े पुराणी भले न लाभै पुरियो जीव नै।
अठसठ तीरथ एक सुभ्यागत घर आये आदरियो जीव नै।
देवजी की आस विष्णु जी री संपत कुड़ी मेर न करियो जीव नै।
रावां सूं रंक करे राजिन्द्र हस्थी करै गाडरियो जीव नै।
ऊजड़बासा बसै ऊजाड़ा शहर करै दोय घरियो जीव नै।
रीता छाले छला रितावै संमद करै छीलरियो जीव नै।
पाणीं सूं घृत कूड़ी सूं कुरड़ा सो कीता बाजरियो जीव नै।
कंचन पालट करै कथीरों खल नारेलो गिरियो जीव नै।
पाँचा क्रोड़या गुरु पहलादो करणी सीधो तिरियो जीव नै।
हरिचंद राव तारादे राणी सत सूं कारज सरियो जीव नै।
काशी नगरी मां करण कमायो साह घर पाणी भरियो जीव नै।
पाँचू पांडू कुन्तादे माता अजर घणैरो जरियो जीव नै।
कलियुग दोय बड़ा राजिन्द्र गोपीचन्द भरथरियो जीव नै।
गुरु-वचने जोगूंटो लीयो चूको जामण-मरियो जीव नै।
भगवीं टोपी भगवीं कंथा घर-घर भिक्षा ने फिरियो जीव नै।
खांडी खपरी ले नीसरियो धोल उजीणी नगरीयो जीव नै।
तारण हार थलासिर आयो जो कोई तरै सो तरियौ जीव नै।

जीवन-मरण के बन्धन से मुक्ति देने वाले गुरु जम्भेश्वर भगवान् मरुधरा के बीच संभराथल धोरे पर आये हैं यदि कोई इस संसार सागर से पार पहुंचना चाहे तो वह गुरु शरण में जाकर अपने प्राणों का उद्धार कर सकता है। कवि कहता है कि यदि अपने इस जीवात्मा का भला चाहते हो तो अपने इस जीवन को भगवान् विष्णु की सेवा में अर्पित कर दो।

हे प्राणी ! तुम्हें जो यह मानव शरीर मिला है यह दिनो-दिन क्षीण होकर पुराना होता जा रहा है। यदि मनुष्य देह पाकर भी मुक्ति का उपाय नहीं किया तो पुनः यह मानव शरीर और यह घर-नगर नहीं मिलेगा।

घर आये मेहमान का आदर सत्कार करने तथा उसकी सेवा करने से जिस पुण्य फल की प्राप्ति होती है वह अड़सठ तीर्थों में जाने और नहाने से भी कहीं ज्यादा है। यह समस्त संसार, यह धन-दौलत सब भगवान् विष्णु की सम्पत्ति है

वही सब का स्वामी है उसी पर पूर्ण विश्वास रखते हुए अपना जीवन बिताओ। झूठ-मूठ इस धन-सम्पत्ति के स्वामी बनने का अहंकार मत पालो। वह पूर्ण परमात्मा सर्व शक्तिमान है वह राजा को भिखारी और भिखारी को राजा बना सकता है। वह विशालकाय शक्तिशाली हाथी को एक भेड़ के सदृश तुच्छ बना सकता है। वह सुनसान विरान धरती पर शहर बसा सकता है और बड़े-बड़े शहरों को विरान बना सकता है। वह चाहे तो दो घरों का शहर बना दे और पूरे शहर को उजाड़ कर दो घर बना दे। परमात्मा की शक्ति अपार है वह खाली को भर देता है और भरे हुए को खाली कर सकता है वह समुद्र को छोटी-सी तलैया और तलैया (पोखर) को विशाल सागर बना सकता है। उसकी माया अपार है। वह पानी को घी बना सकता है और मुरझाई हुई या चुंटी हुई बाजरी के पौधों को पुनः हरा-भरा बना कर उस पर घने-दानों वाले 'कोरड़े' सिट्टे लगा सकता है। वह स्वर्ण को कथीर में बदल सकता है तथा खली को नारियल की गिरी बना सकता है।

गुरु महाराज की कृपा से विष्णु भक्ति के बल पर भक्त प्रहलाद पांच करोड़ जीवों को साथ लेकर इस संसार सागर से पार हुए।

राजा हरिश्चन्द्र और उसकी रानी तारादे दोनों सत्य पर अडिग रहे सत्य की रक्षा हेतु अपन राज्य छोड़ और काशी नगरी में जाकर एक व्यापारी के हाथ बिक गये उस के यहां पानी भरा परन्तु अपनी सच्चाई की राह नहीं छोड़ी और सत्य के बल पर स्वयं तो मुक्त हुए हैं साथ में सात करोड़ अन्य जीवों को भी मुक्ति दिलाई।

इसी प्रकार पांच पांडव और उनकी माता कुन्ती ने अपार दुःख सहते हुए भी काम क्रोध ईर्ष्या मद और मोह जैसे अजरणीय भावों को संयम से जरा, सहन किया और विष्णु कृपा से बैकुण्ठ धाम को पहुंचे।

इस कलिकाल में गोपीचन्द तथा भरथरी नाम के दो महान राजा हुए जिन्होंने गुरु आज्ञा पा कर जोग धारण किया।

कहाँ तो धारा नगरी तथा ऊजीण नगरी का राज्य और कहां भगवीं कंथा पहने भगवीं टोपी लगाये हाथ में खांडी खपरी लिए घर-घर भिक्षा मांगते हुए फिर रहे हैं। वही सच्चा त्याग वैराग्य और जोग था जिसके बल पर राजा गोपीचन्द-भरथरी दोनों अमर हो गये। इस जन्म-मरण के चक्कर से हमेशा-हमेशा के लिए मुक्त हो गये।

सब को मुक्ति देने वाला वही परम गुरु परमात्मा भगवान् विष्णु का आत्म रूप गुरु जम्भेश्वर भगवीं टोपी पहने संभराथल के धोरे पर विराजमान है अतः हे भक्तों ! तुम वह कार्य करो जिसे करने के लिए गुरु महाराज तुम्हें बार-बार कहते रहे हैं। यह सब का सौभाग्य है कि इस जन्म-मरण, सुख-दुख के बन्धन से मुक्ति देकर संसार सागर से तारने वाले साक्षात् विष्णु भगवान् जम्भेश्वर के रूप में संभराथल पर विराजमान हैं। जो मुक्ति चाहे वह पाये।

व्रत और त्यौहार

जैसा कि पूर्व प्रसंगों में उल्लेखित किया जा चुका है कि विशाल भारतीय समाज में बिश्नोई समाज की एक भिन्न पहचान है। इस भिन्नता का कारण शेष समाज से कोई विरोध या अलगाव न होकर इसकी जीवन के प्रति एक भिन्न दार्शनिक दृष्टि रही है। वैसे सामान्यत: यह समाज भी उन्हीं व्रत-त्यौहारों को प्रकारान्तर से मानता है जिन्हें समस्त हिन्दू समाज सदियों से मानता रहा है जैसे अमावस्या एकादशी होली अक्षय तृतीय दीपावली आदि परन्तु अपनी भिन्न 'एप्रोच' के कारण इनमें स्वरूप प्रक्रिया एवं लक्ष्यगत पृथक्ता परिलक्षित होती रही है।

व्रत

(1) अमावस - गुरु जम्भेश्वर महाराज ने अमावस्या का व्रत रखने का आदेश बिश्नोई मात्र को दिया है। यह व्रत रखना कितना और क्यों महत्वपूर्ण है इसका विस्तृत उल्लेख उनतीस नियमों की व्याख्या के प्रसंग में किया जा चुका है। काल-क्रम एवं नक्षत्रों की गति की दृष्टि से अमावस्या वह समय है जब पृथ्वी चन्द्रमा और सूर्य एक रेखा पर होते हैं। चेतन जगत् को प्राण तत्व एवं रस का दाता चन्द्रमा ओट में आकर हमारे लिए विलुप्त हो जाता है। नक्षत्रों की यह स्थिति हमारे जीवन-जगत् को विशेष तौर से प्रभावित करती है। ऐसे समय में अमावस्या का व्रत रखना, अपने मन को ज्ञान-ध्यान पर केन्द्रित करना अति महत्वपूर्ण है। उपवास के सन्दर्भ में कहा जा सकता है कि यह वह समय है जब हमारा मन परमात्मा, परम चेतना, सूक्ष्म-ज्ञान एवं सत्य के अति निकट अवस्थित रहता है। इस काल में भोजन न करना, तन से थोड़ा हट कर मन के और पास जाने में सहायक सिद्ध होता है।

'अमावस्या व्रत राखणों भजन विष्णु बतायो जोय।'

'सोम अमावस आदितवारी काँय काटी बन रायों।'

जैसे गुरु वचन इन्हीं तथ्यों की पुष्टि करते हैं। अमावस्या में भी सोमवार की अमावस का विशेष महत्व माना जाता है। अमावस का व्रत दिन से नहीं उस घड़ी से रखा एवं खोला जाता है जब वास्तव में पञ्चाग के अनुसार अमावस तिथि का प्रारम्भ एवं समापन होता है।

(2) ग्यारस (एकादशी) - मास के हर पक्ष में आने वाली एकादशी का व्रत रखने का कोई निर्देश या परम्परा इस समाज में नहीं है। केवल वर्ष में एक बार आने वाली निर्जल ग्यारस रखने की परम्परा अवश्य प्रचलित है। इस व्रत को रखने की प्रक्रिया भी शेष हिन्दू समाज से थोड़ी भिन्न है। यह तिथि जेष्ठमास के शुक्ल पक्ष में आती है जब सूर्य की किरणें अपना प्रखरतम ताप बरसाती हैं। भयंकर गर्मी पड़ती है, पल-पल प्यास लगती है, बार-बार पानी पीने को मन करता है, जब शेष समाज के लोग शीतल-पेय शरबत पीते पिलाते हैं फलों का रस, रसों का आहार

करते हैं उस भीषण गर्मी में बिश्नोई जो निर्जला ग्यारस का व्रत रखता है वह वास्तव में सूर्योदय से लेकर शाम पर्यन्त नि:जल ही रहता है। अन्न-फल तो दूर पानी की एक बून्द तक होठों को नहीं छुवाता, यह एक तरह का जलानुशासन है। रेगिस्तान की लपलपाती 'लू' को चुनौती देता हुआ व्रत-धारी पानी को नकार कर अपने आत्म-बल और शारीरिक सहनशीलता का परिचय देता है। सूर्यास्त के पश्चात् भी वह दूसरे दिन सूर्योदय से पहले अन्न ग्रहण नहीं करता।

निर्जला ग्यारस के व्रत को रखने की यह भिन्न प्रक्रिया ही इस समाज की अपनी दृष्टि और भिन्नता की परिचायक है।

त्यौहार

(1) होली - होली सम्पूर्ण हिन्दू समाज का त्यौहार है परन्तु बिश्नोइयों की होली शेष समाज से पूर्णत: भिन्न है। यहां होली का सीधा सम्बन्ध पुराण-प्रचलित हिरण्यकशिपु की बहिन तथा प्रहलाद की बूवा 'होलिका' से जोड़ा जाता है।

विष्णु-भक्त प्रहलाद को उसका असुर पिता हिरण्यकशिपु जब भक्ति-पथ से विचलित नहीं कर सका तब उसने अपनी बहिन होलका द्वारा उसे आग में जला कर मारने का षड्यन्त्र रचा। कारण होलिका को आग में न जलने का वरदान था। वह अपने भीतीजे प्रहलाद को अपनी गोद में बिठाकर आग की चिता पर बैठ गई। चारों ओर राज के रक्षकों का पहरा था। वे सब इस खुशी में मदहोश थे कि आज राज का विद्रोही, उनका सिरदर्द प्रहलाद आग में जल कर मर जायेगा। परन्तु हुआ यों कि होलिका को आग में न जलने का जो वरदान था उसमें शर्त भी थी कि जब तक वह पर पुरुष के अंग को स्पर्श न करें तभी तक वरदान प्रभाव कारी होगा। वह स्नेह या भ्रम वश यह भूल गई कि प्रहलाद भी पुरुष है जिसके अंग स्पर्श से उसका वरदान खंडित हो जायेगा। वह जब जलने लगी तो आग से निकल कर भागने का प्रयास भी किया परन्तु रक्षकों ने समझा प्रहलाद भाग रहा है उन्होंने डण्डों से मार-मार कर उसे जला दिया। प्रहलाद पहले से चौकस था उसके साथी उसे बचाने के प्रयास में थे रात्रि के अंधेरे का व रक्षकों की लापरवाही का लाभ उठा कर वे प्रहलाद को तो आग लगते ही निकाल कर ले गये। बूवाजी जल कर राख हो गये। 'जाको राखे साइंया मार सके न कोय।'

इस कथा के परिप्रेक्ष्य में बिश्नोई यह मानते हैं कि हम सब प्रहलाद पंथी हैं। उस समय प्रहलाद अकेला नहीं तेतीस करोड़ अन्य लोग भी विष्णु-भक्ति की राह पर चलने वाले उसके साथ थे। जब नृसिंह भगवान् ने हिरण्यकशिपु को मारा और प्रहलाद की रक्षा की तब प्रहलाद ने भगवान् से अपने साथी तेतीस करोड़ जीवों को मुक्ति देने का वचन मांगा। नृसिंह भगवान् ने प्रहलाद की प्रार्थना मानकर पांच करोड़ को तो उसके साथ ही मुक्ति दे दी तथा शेष में से सात करोड़ त्रेता युग में नव करोड़ द्वापर युग में और फिर बाकी बचे बाहर करोड़ को कलियुग में स्वयं जम्भेश्वर के रूप में अवतार धारण कर मुक्ति देने का वचन दिया। अत: सब

बिश्नोई अपने को उन्हीं बारह करोड़ प्रहलाद पंथी जीवों में मानते हैं।

इस मूल कथा को मद्देनजर रखते हुए ही यह समाज होली के त्यौहार को अपने एक भिन्न रूप में मानता है। होली के अवसर पर राग-रंग एवं गुलाल नहीं उड़ाया जाता। होली दहन के पूर्व सविनय-अवज्ञा आन्दोलन के रूप में भगवान् को इस चुनौती के साथ कि यदि उन्होंने भक्त प्रहलाद् की रक्षा नहीं की तो कल से कोई भगवान् की माला नहीं फेरेगा अपनी-अपनी मालाएं (अब मींगणों की) होलिका के लिए रची जा रही चिता पर डाल देते हैं। चुप-चाप अपने घरों को लौट जाते हैं। सूर्यास्त से पूर्व दु:ख-सोग की मन: स्थिति में कड्ढी-खीचड़ा खाते हैं। किसी के घर रोटी-साग मिठाई आदि नहीं बनते। दूसरे दिन प्रात: जब वस्तु स्थिति से अवगत होते है। प्रहलाद के जीवित बचने की प्रसन्नता में यज्ञ करते है। भजन कीर्तन करते है और भक्ति पथ पर अडिग रहने की प्रतिज्ञा स्वरूप पालह ग्रहण कर अच्छे से अच्छा भोजन माल मिठाई खाते है। विष्णु भक्त प्रहलाद के विजय की खुशी में एक-दूसरे से प्रेम पूर्वक हेत मिलान करते है।

(2) दीपावली - यह धन की देवी लक्ष्मी का त्यौहार माना जाता है। धन तेरस को लोग मूल्यवान वस्तुएं खरीदते हैं तथा दीपावली की रात सोना चांदी हीरा-जवाहारात रुपयों पैसों की इसी भाव से पूजा करते हैं कि ये सब लक्ष्मी के प्रति रूप हैं। परन्तु बिश्नोई समाज इस त्यौहार को भी भिन्न परिप्रेक्ष्य में मनाता है। दीप जलाये जाते हैं परन्तु धन-दौलत की देवी के स्वागत में नहीं बल्कि ज्ञान की रोशनी के प्रीतक मान कर। दीपावली की रात्रि में पूजा करते हैं परन्तु धन की नहीं प्रकृति की। काकड़ी मतीरा काचर बोर फली इत्यादि कृषि उपज की वस्तुओं की थी। अन्न की देवी प्रसन्न होकर इतनी तूठे कि उनके घर आया कोई मेहमान कभी भूखा-प्यासा न जावें। पक्षियों को चुग्गा और स्वानों को रोटियाँ मिलती रहे।

(3) आखातीज (अक्षय तृतीया)- यह त्यौहार नव वर्ष के स्वागत स्वरूप, इस कामना के साथ मनाया जाता है कि आने वाला वर्ष उन्हें अक्षुण रखें। वे फलें-फूलें। इस क्षण-क्षण क्षीण होते जीवन में कुछ तो अक्षणीय भी हों। इस दिन किसान प्रात: अपने खेत में जाते हैं और नव वर्ष में सुकाल-दुकाल के सगुन लेते हैं। घरों में मोठ-बाजरी का खीचड़ा बनता है जिसे लोग घी-शक्कर के साथ मिलाकर खाते हैं।

अक्षय तृतीया की अक्षुणता को ध्यान में रख कर ही शायद इस दिन को लोग सर्वमान्य शुभ मुहूर्त समझ बड़ी संख्या में विवाह आयोजित करते रहे हैं।

इस प्रकार ये कुछ व्रत-त्यौहार हैं जिन्हें बिश्नोई-समाज मनाता रहा है। इनके अतिरिक्त कुछ स्थानीय त्यौहार भी स्थानीय परिप्रेक्ष्य में मनाये जाते रहे हैं यथा गोगा, गंवर, जन्माष्टमी, केशरिया कंवर आदि-आदि।

आरती

कूं-कूं केरा चरण पधारो गुरु जंभ देव। - श्री साहबराम राहड़

कूं-कूं केरा चरण पधारो गुरु जंभ देव साधु जो भगत थांरी आरती करै।
जंभ-गुरु ध्यावै वो तो सर्ब सिद्धि पावै कोटि जनम केरा पातक झड़ै।
हृदय जो हवेली मांहि रहो प्रभु रात-दिन। मोतियन की प्रभु माला जो गले।।
काना बिच कुंडल सीस पर टोपी। नयना मानो दोय मसाल सी जले।
सोने को सिंघासन प्रभु रेसम केरी गदियां। फूला हंदी सेज्यां प्रभु बैस्यां ही सरै।।
प्रेम रा पियाला थानै पावै थांरा साधु जन। मुकट छतर सिर चंवर ढुलै।
संख जो सहनाई बाजै झींझा करै झननन। भेरी जो नगारा बाजै नोबतां घुरै।।
कंचण केरा थाल कपूर केरी बातियां। अगर को धूप रवि इन्द्र जो झुरै।।
मजीरा टंकोरा झालर घंटा करै घननन। सबद सुण्यां सूं सारा पातक झड़ै।।
सेस से सेवक थारै शिव से भंडारी। ब्रह्मा से खजाञ्ची सो जगत् घरै।।
आरती में आवै आय सीस जो नवांवै। जागरण सुण्या सूं जंमराज जो डरै।।
साहब सुनावै गावै नवनिधि पावै। सीधो मुक्ति सिधावै काल-कर्म जो टलै।।

गुरु जम्भ-चरित-धुन-गंगादास जी कृत

सांय गुरु आप संभराथल आये हो म्हारे सन्ता के मन भाये हो-(टेक)
प्रात: आये म्हारे जंभ-गुरु जगदीश सुर-नर मुनि जन नांवे सीस। (टेक)
लोहट घर अवतारा हो ये तो धनि-धनि भाग हमारा हो।
अलख निरंजण आये हो म्हारै भगतां रै मन भाये हो।
घट-घट मांहि विराजै हो ये तो सरस-सबद धुनि गाजै हो।
जाके चरण कोई ध्यावै हो सो तो चारि पदारथ पावै हो।
संभराथल आसण साजै हो झिग-मिग जोत प्रकासै हो।
नंद घर गैयां चारी हो ये तो नख पर गिरवर धारी हो।
विराट-रूप अखण्डा हो जाके रोम कोटि ब्रह्मण्डा हो।
इस धुन को कोई गावै हो वे तो वास बैकुण्ठा पावै हो।
जंभ-गुरु की आशा हो यह तो जस गावै गंगदासा हो।

होम-मंत्र

ओं अग्नये स्वाहा ।।1।।
ओं सोमाय स्वाहा ।।2।।
ओं प्रजापतये स्वाहा ।।3।।
ओं इन्द्राय स्वाहा ।।4।।

ओं सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा ।।1।।
ओं सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ।।2।।
ओं ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा ।।3।।
ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या
जुषाणः सूर्योवेतु स्वाहा ।।4।।

ओं अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ।।1।।
ओं अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वचः स्वाहा ।।2।।
ओं ज्योतिरग्नि अग्निर्ज्योति स्वाहा ।।3।।

(मन में) ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजू रात्र्येन्द्रवत्या।
जुषाणो अग्निर्वेतु स्वाहा ।।4।।

ओं भूरग्नये प्राणाय स्वाहा ।।1।।
ओं भुवर् वायवेऽपानाय स्वाहा ।।2।।
ओं स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा ।।3।।
ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापान व्यानेभ्यः स्वाहा ।।4।।
ओं आपो ज्योतिरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरों स्वाहा ।।5।।
ओं यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते। तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा
।।6।।
ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद्भद्रं तन्न आसुव स्वाहा ।।7।।

ओं सर्ववै पूर्णस्वाहा पूर्ण आहूति मन्त्र

(इसे तीन बार बोलते हुए आहूति दें)

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य
धीमहि। धियो यो नः प्रचयोदयात्।।
ओ३म शान्तिः शान्तिः शान्तिः।